CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

आधुनिक भारत

वैकल्पिक इतिहास

भाग -3

यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड
सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा
राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं एवं
संघ व राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा के लिए उपयोगी

आधुनिक भारत

वैकल्पिक इतिहास

भाग–3

यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड
सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं
एवं संघ व राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा तथा
विश्वविद्यालय स्तर के परीक्षाओं के लिए उपयोगी

संपादक
एन. एन. ओझा
लेखन एवं प्रस्तुति
क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

पुस्तक के संबंध में

यह पुस्तक यूजीसी नेट/जेआरएफ, राजस्थान 1st ग्रेड व 2nd ग्रेड सीयूईटी पीजी, टीजीटी/पीजीटी तथा राज्य स्तरीय प्रवक्ता/अध्यापक भर्ती परीक्षाओं एवं संघ व राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर के परीक्षाओं की तैयारी करने वाले अभ्यर्थियों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है।

पुस्तक में आधुनिक भारत के संपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं को प्रतियोगी एवं प्रवेश परीक्षाओं के पाठ्यक्रम पर आधारित सामग्री को समाहित किया गया है। पुस्तक की रूपरेखा तैयार करते समय हमारा उद्देश्य बहुआयामी रहा है। यह आधुनिक भारत का इतिहास के सभी पक्षों पर समग्र रूप से प्रकाश डालती।

वर्तमान में प्रतियोगी परीक्षाओं के बदलते पैटर्न को ध्यान में रखते हुए पुस्तक को तथ्यात्मक और संकल्पनात्मक दोनों दृष्टिकोण से तैयार किया गया है। यह उन प्रतियोगियों के लिए भी लाभकारी साबित होगा जो न तो इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं और न ही इतिहास का उन्होंने पहले कभी अध्ययन किया है।

इस पुस्तक का लेखन और विषय वस्तु इस दृष्टिकोण से तैयार की गई है कि इस पुस्तक का अध्ययन करके भविष्य में आयोजित होने वाली परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर सहजता से दिये जा सकें।

पुस्तक को त्रुटिहीन रूप में प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है, परन्तु इतिहास से संबंधित सभी तथ्यों को पूर्णत: सत्यापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि काल एवं परिस्थिति के अनुसार लेखक के अपने-अपने विचार होते हैं, अत: पुस्तक में सर्वमान्य तथ्यों एवं विचारों को ही समाहित किया गया है।

फिर भी यदि इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटि होती है तो हम उसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं। साथ ही आपसे आग्रह है कि त्रुटियों के संबध में हमें अवगत कराएं, ताकि हम आगामी अंक में उनमें सुधार कर सकें।

इस पुस्तक के लेखन में निम्न महत्वपूर्ण पुस्तकों तथा इग्नू, एनसीईआरटी व अन्य राज्य बोर्डों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के सामग्रियों का संकलन परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से किया गया है।

- एस.बी. चौधरी -*सिविल डिस्टर्बेंस अंडर ब्रिटिश रूल (1757- 1857)*
- आर.सी. मजूमदार -*1857का सिपाही विद्रोह*
- आर.सी. मजूमदार -*भारतीय लोगों का इतिहास एवं संस्कृति vols. IX, X, XI*
- एस.एन. सेन - *1857*
- बिपिन चंद्रा - *आधुनिक भारत*
- सुमित सरकार - *आधुनिक भारत*
- एम.जी. रानाडे - *धार्मिक एवं सामाजिक सुधार*
- पी.ई. रॉबर्ट्स - *हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया*
- एस.आर. चौधरी - *लेफ्ट मूवमेंट इन इंडिया, 1917- 47*
- बी.एल. ग्रोवर - *आधुनिक भारतीय इतिहास : एक मूल्यांकन*
- आर.सी. दत्त - *भारत का आर्थिक इतिहास 2 vol*

आशा है कि यह पुस्तक अपने नवीनतम स्वरूप में आपके लिए अत्यंत उपयोगी साबित होगी।

–संपादक

अनुक्रमणिका

आधुनिक भारत

1. **यूरोपवासियों का प्रवेश ..... 485 – 494**
   - ➲ **आधुनिक भारत 485**
   - ➲ **पुर्तगालियों का आगमन 487**
   - ➲ **डचों का आगमन 490**
   - ➲ **अंग्रेजों का आगमन 491**
     - ❖ पूर्व भारत में विस्तार 492
     - ❖ प्रारम्भिक कठिनाईयां एवं निदान 492
     - ❖ डेन 494
   - ➲ **फ्रांसीसियों का आगमन 494**

2. **बिटिश विस्तार एवं नवीन राज्यों का उत्थान ..... 495 – 514**
   - ➲ **कर्नाटक युद्ध 495**
     - ❖ प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746-48) 495
     - ❖ सेट थोमें का युद्ध 1748 ई. 496
     - ❖ द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749-54) 496
     - ❖ अम्बूर का युद्ध (1745 ई.) 497
     - ❖ पांडिचेरी की संधि 498
     - ❖ तृतीय कर्नाटक युद्ध 1758-63 498
     - ❖ वाण्डिवास का युद्ध (22 जनवरी 1760 ई.) 498
     - ❖ पेरिस की संधि (1763 ई.) 499
   - ➲ **बंगाल विजय 499**
     - ❖ प्लासी का युद्ध (23 जून, 1757) 500
     - ❖ मीर जाफर (1763 ई-1765 ई.) 501
     - ❖ बक्सर का युद्ध (22 अक्टूबर 1764 ई.) 502
     - ❖ नजमुदौला (1765 से 1766) 502
     - ❖ इलाहाबाद की संधि (16 अगस्त 1765 ई.) 503
   - ➲ **बंगाल की व्यवस्था 503**
     - ❖ आंग्ल-मैसूर युद्ध 504
   - ➲ **मैसूर 504**
   - ➲ **टीपू की शासन प्रणाली 505**
   - ➲ **प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई.) 507**
     - ❖ सालबाई की संधि (1782 ई.) 507
   - ➲ **द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1803-06 ई.) 508**
     - ❖ बसीन की संधि (1802 ई.) 508
     - ❖ देवगांव की संधि (1803 ई.) 508
     - ❖ सुर्जी-अर्जनगांव की संधि (1803 ई.) 509
   - ➲ **तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18 ई.) 509**
     - ❖ पूना की संधि (13 जून 1817 ई.) 509
   - ➲ **मराठों की पराजय के कारण 510**
   - ➲ **पंजाब 511**
     - ❖ रणजीत सिंह (1792 ई. से 1839 ई.) 511

3. **भारत में बिटिश राज की आरंभिक संरचना ..... 515 – 539**
   - ➲ **द्वैध शासन योजना 515**
   - ➲ **रेग्युलेटिंग एक्ट-1773 ई. 515**
     - ❖ एक्ट पारित होने के कारण 515
     - ❖ रेग्युलेटिंग एक्ट के प्रावधान 516
     - ❖ अधिनियम के दोष 516
   - ➲ **बंगाल न्यायपालिका 516**
     - ❖ अधिनियम 1781 ई. 516
   - ➲ **पिट्स इण्डिया एक्ट, 1784 ई. 517**
     - ❖ पिट्स इण्डिया एक्ट के मुख्य उपबंध 517
     - ❖ अधिनियम का लेखा-जोखा 517
   - ➲ **1786 ई. का अधिनियम 517**
     - ❖ इस अधिनियम के प्रमुख उपबन्ध 517
   - ➲ **चार्टर एक्ट, 1793 ई. 517**
   - ➲ **चार्टर एक्ट 1813 ई. 518**
     - ❖ चार्टर एक्ट 1813 ई. के मुख्य उपबन्ध 518
   - ➲ **चार्टर एक्ट 1833 ई. 518**
     - ❖ चार्टर एक्ट 1833 ई. के मुख्य उपबंध 518
   - ➲ **चार्टर एक्ट-1853 ई. 519**
     - ❖ चार्टर एक्ट-1853 ई. के मुख्य उपबंध 519
     - ❖ चार्टर एक्ट-1853 ई. का लेखा-जोखा 519
   - ➲ **भारत सरकार अधिनियम-1854 ई. 519**
     - ❖ अधिनियम के मुख्य उपबंध 520
     - ❖ अधिनियम का लेखा-जोखा 520
   - ➲ **महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र 520**
   - ➲ **ब्रिटिशकाल में भारत का संवैधानिक विकास 521**
   - ➲ **प्रशासनिक संगठन 522**
     - ❖ न्यायिक संगठन 523
   - ➲ **सामाजिक-सांस्कृतिक नीति 524**
   - ➲ **समितियां तथा आयोग 525**
   - ➲ **शिक्षा 525**
     - ❖ ब्रिटिशकालीन समितियां 526
   - ➲ **रेलवे 529**
     - ❖ टॉमस राबर्ट्सन आयोग 530
     - ❖ एकवर्थ समिति (1919 ई.) 530
   - ➲ **लोक सेवा 530**
     - ❖ चार्ल्स ऐचीसन आयोग (1876) 530
     - ❖ आइस्लिंगटन आयोग (1912 ई.) 530
     - ❖ ली ऑफ फेयरहॉम समिति (1923 ई.) 530

- ➲ **सेना 531**
- ➲ **अकाल 531**
  - ❖ सर जार्ज कैम्पबेल आयोग (1866-67) 532
  - ❖ स्ट्रेची आयोग (1878-80 ई.) 532
  - ❖ मैकडॉनल आयोग (1900 ई.) 532
  - ❖ सर जॉन वुडहेड आयोग (1945 ई.) 532
- ➲ **छापाखाना (प्रेस) एवं इसका प्रभाव 533**
  - ❖ प्रेस के विरुद्ध प्रतिबंध 534
- ➲ **प्रेस की भूमिका एवं प्रभाव 536**
  - ❖ देसी प्रेस द्वारा राष्ट्रीय चेतना का प्रसार 536
- ➲ **भारतीय भाषाओं में आधुनिक साहित्य का उदय 537**

4. बिटिश राज का आर्थिक प्रभाव .... 540 – 554

- ➲ **औपनिवेशिक नीति 540**
  - ❖ उद्देश्य 541
- ➲ **आर्थिक प्रभाव 541**
- ➲ **भू राजस्व बंदोबस्ती 547**
- ➲ **इस्तमरारी बन्दोबस्त/स्थायी बन्दोबस्त 547**
  - ❖ **रैयतवाड़ी बन्दोबस्त 548**
  - ❖ दोष छोड़ा 549
  - ❖ महालवाड़ी प्रथा 549
- ➲ **कृषि का वाणिज्यीकरण 549**
  - ❖ ग्रामीणों पर प्रभाव 550
  - ❖ भूमिहीन श्रमिकों की वृद्धि 551
- ➲ **ग्रामीण भारत की दुर्भिक्ष नीति 551**
- ➲ **रेलवे का विकास 553**

5. सांस्कृतिक समागम एवं सामाजिक परिवर्तन .... 555 – 570

- ➲ **भारतीय पुनर्जागरण तथा सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन 555**
  - ❖ भारतीय पुर्नजागरण को प्रेरित करने वाले कारक 555
- ➲ **समाज सुधाार से संबंधात कार्य 556**
- ➲ **मुस्लिम सामाजिक-धार्मिक आंदोलन 562**
- ➲ **निम्न जातीय आन्दोलन 563**
  - ❖ महाराष्ट्र में निम्न जातीय आन्दोलन 564
- ➲ **तमिलनाडु में आन्दोलन 566**
- ➲ **आंध्र में आत्म-सम्मान आन्दोलन 567**
- ➲ **कर्नाटक में गैर-ब्राह्मण आन्दोलन 567**
- ➲ **केरल में आंदोलन 567**
- ➲ **देश के अन्य आंदोलन 568**
- ➲ **सामाजिक सुधार 568**
- ➲ **पुर्नजागरण से भारतीय मध्यम वर्गों का विकास 569**
  - ❖ भारत के पुर्नजागरण आंदोलन से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना का योगदान 570

6. महत्वपूर्ण गवर्नर जनरल एवं वायसराय .... 571 – 606

- ➲ **रॉबर्ट क्लाइव (1744-1767 ई.) 571**
  - ❖ बंगाल का गर्वनर 571
- ➲ **वेन्सिटार्ट (1760-65 ई.) 572**
- ➲ **वेरेलस्ट (1767-69 ई.) 572**
- ➲ **कार्टियर (1769-72 ई.) 572**
- ➲ **वारेन हेस्टिंग्स (1772-1785 ई.) 572**
  - ❖ रेग्यूलेटिंग एक्ट तथा पिट्स इंडिया एक्ट (1773 एवं 1784 ई.) 576
  - ❖ लार्ड कॉर्नवालिस (1786-93 ई.) 577
  - ❖ न्यायिक सुधार 577
- ➲ **सर जॉन शोर (1793-98 ई.) 579**
- ➲ **लॉर्ड वेलेजली (1798-1805 ई.) 579**
  - ❖ सहायक संधि 580
  - ❖ सहायक संधि के दुष्प्रभाव 580
  - ❖ सहायक संधि और देशी राज्य 581
- ➲ **सर जार्ज बार्लो (1805-1807 ई.) 582**
- ➲ **लार्ड मिंटो (1807-1813 ई.) 582**
  - ❖ लॉर्ड मिंटो का विदेशों से संबंध 583
- ➲ **लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813-1823 ई.) 583**
  - ❖ तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध 584
- ➲ **लार्ड एडम्स (1823 ई.) 585**
- ➲ **लार्ड एम्हर्स्ट (1823-28 ई.) 585**
- ➲ **लार्ड विलियम केवेंडिश बैंटिक (1828-1835 ई.) 585**
  - ❖ भारत का गर्वनर जनरल 585
- ➲ **सर चार्ल्स मेटकॉफ (1835-1836 ई.) 589**
- ➲ **लॉर्ड आकलैंड (1835-1842 ई.) 589**
- ➲ **लॉर्ड एलनबरो (1842-1844 ई.) 589**
- ➲ **लॉर्ड हार्डिंग प्रथम (1844-48 ई.) 589**
- ➲ **लार्ड डलहौजी (1848-56 ई.) 589**
  - ❖ साम्राज्य विस्तार 589
  - ❖ द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध 592
  - ❖ प्रशासनिक सुधार 592
- ➲ **वायसराय तथा गवर्नर जनरल 594**
  - ❖ लॉर्ड कैनिंग (1858-1862 ई.) 594
  - ❖ लॉर्ड एल्गिन प्रथम (1862-1863 ई.) 594
  - ❖ सर जॉन लॉरैन्स (1864.69 ई.) 594
  - ❖ लॉर्ड मेयो (1869.72 ई.) 594
  - ❖ लॉर्ड नार्थब्रुक (1872.76 ई.) 594
  - ❖ लार्ड लिटन (1876-80 ई.) 595
  - ❖ लार्ड रिपन (1880-84 ई.) 597
  - ❖ रिपन का त्यागपत्र 599
  - ❖ लॉर्ड डफरिन (1884.88 ई.) 600
  - ❖ लॉर्ड लेन्सडाउन (1888.94 ई.) 600
  - ❖ लॉर्ड एल्गिन द्वितीय (1894.98 ई.) 600
  - ❖ लार्ड कर्जन (1899-1905 ई.) 600
  - ❖ प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms) 600
  - ❖ यंग हस्बैंण्ड 603

7. बिटिश राज्य की विदेश नीति .... 607 – 611

- ➲ **सिंध की विजय 607**

- ➲ आंग्ल-अफगान संबंध 608
- ➲ (द्वितीय आंग्ल-अफगान युद्ध) (1878–1880 ई.) 610
  - ❖ गण्डमक की संधि (26 मई, 1879) 610
- ➲ नेपाल 611
- ➲ बर्मा 611
  - ❖ याण्डबू की संधि (24 फरवरी, 1826 ई.) 611

8. ब्रिटिश शासन का विरोध .... 612 – 622

- ➲ नागरिक विद्रोह 612
  - ❖ विद्रोहों का स्वरूप 612
- ➲ अन्य नागरिक व गैर आदिवासी विद्रोह 612
- ➲ आदिवासी विद्रोह 615
- ➲ अन्य आदिवासी विद्रोह 617
- ➲ विद्रोहों-आन्दोलनों से जुड़ी शब्दावली 618
- ➲ किसान आन्दोलन 619
  - ❖ किसान विद्रोह के कारण 619
- ➲ अन्य किसान आंदोलन 621
  - ❖ आंदोलनों का महत्व 622

9. 1857 का विद्रोह .... 623 – 629

- ❖ तात्कालिक कारण 624
- ❖ विद्रोह का प्रारम्भ 624
- ❖ विद्रोह का प्रसार 624
- ➲ विद्रोह की असफलता के कारण 626
  - ❖ 1857 के विद्रोह का परिणाम/प्रभाव 626
- ➲ विद्रोह का चरित्र या स्वरूप 627

10. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम : प्रथम चरण .... 630 – 653

- ➲ अंग्रेजी राज्य का प्रभाव 630
  - 1. आर्थिक प्रभाव (Economic impact) ---------- 630
  - 2. राजनीतिक प्रभाव (Political Impact) ---------- 631
  - 3. सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव (Social and Cultural Impact) ---------- 632
- ➲ राष्ट्रीय चेतना का विकास 633
  - 1. विदेशी प्रभुत्व का परिणाम 633
  - 2. भारत में प्रशासनिक और आर्थिक एकता की स्थापना .. 634
  - 3. पश्चिमी विचार तथा आधुनिक शिक्षा का प्रचलन 635
  - 4. आधुनिक समाचार पत्रों का उभरना 635
  - 5. इतिहास के शोध का प्रभाव 636
  - 6. शासकों का जातीय दंभ 636
  - 7. समकालीन यूरोपीय आन्दोलनों का प्रभाव 636
  - 8. समाज तथा धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रगतिशील रूप 636
  - 9. लार्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियां 636
  - 10. इलबर्ट बिल का विवाद 637
- ➲ विभिन्न संगठनों का निर्माण 637
  - ❖ बंगाल प्रेसिडेंसी में राजनीतिक संगठन 637
  - ❖ बम्बई प्रेसिडेन्सी में राजनीतिक संस्थाएं 637
  - ❖ मद्रास प्रेसिडेंसी में राजनीतिक संस्थाएं 638
- ➲ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा इसका नरमपंथी चरण 638
  - ❖ प्रथम चरण (1885–1905 ई.) 638
  - ❖ सेफ्टीवाल्व की अवधारणा 639
  - ❖ कांग्रेस का नरमपंथी चरण 640
- ➲ कार्यक्रम और कार्यकलाप 641
  - 1. साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना 641
  - 2. संवैधानिक सुधारों की मांग 641
  - 3. प्रशासकीय सुधारों की मांग 642
  - ❖ जनता की भूमिका 643
  - ❖ आलोचनात्मक मूल्यांकन 643
- ➲ आर्थिक राष्ट्रीयता 644
- ➲ उदारवादी नेताओं का योगदान 645
  - 1. दादा भाई नौरोजी **(Grand Oldman of India) 645**
  - 2. फिरोजशाह मेहता (1845–1915) 645
  - 3. गोपाल कृष्ण गोखले (1866–1915) 645
  - 4. सुरेन्द्र नाथ बनर्जी (1848–1925) 645
  - 5. ए.ओ. हयूम (1829–1912) 645
- ➲ स्वदेशी आंदोलन तथा उग्रवाद में वृद्धि 646
  - ❖ बंग-भंग आन्दोलन 646
  - ❖ बंगाल विभाजन का परिणाम 647
- ➲ द्वितीय चरण (1905–1919 ई.) उग्रवादी राष्ट्रीयता का युग 648
  - ❖ ब्रिटिश शासन के सही चरित्र की पहचान 648
  - ❖ आत्म विश्वास का संदेश 648
  - ❖ शिक्षा और बेरोजगारी में वृद्धि 649
  - ❖ कांग्रेस की उपलब्धियों से असंतोष 649
  - ❖ कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियां 649
  - ❖ समकालीन अर्न्तराष्ट्रीय प्रभाव 649
  - ❖ उग्र विचारों से प्रेरित नेताओं का प्रादुर्भाव 649
  - ❖ उग्रवादी दल के उद्देश्य तथा कार्यक्रम 650
  - ❖ कांग्रेस का विभाजन (1907 ई.) 650
  - ❖ उग्रवाद का मूल्यांकन 651
- ➲ उग्रवादी नेताओं का योगदान 651
  - 1. बाल गंगाधर तिलक (1856–1920) 651
  - 2. लाला लाजपत राय (1865– 1928) 652
  - 3. विपिनचन्द्र पाल (1858–1932) 653
  - 4. अरविंद घोष (1872–1950) 653

11. भारत में प्रतिनिधि सरकार .... 654 – 666

- ➲ 1861 का भारतीय परिषद अधिनियम (The Indian Council Act-1861) ---------- 654
  - ❖ अधिनियम के उपबंध 654
  - ❖ अधिनियम के दोष 655
- ➲ भारतीय परिषद अधिनियम, 1892 (INDIAN COUNCIL ACT, 1892) ---------- 655
  - ❖ अधिनियम के मुख्य उपबंध 655
  - ❖ अधिनियम के आलोचनाएं 656
- ➲ भारतीय परिषद एक्ट 1909 (मार्ले मिंटो सुधार) .. 656
  - ❖ अधिनियम के मुख्य उपबंध 657
  - ❖ अधिनियम के दोष 658

➲ **भारतीय शासन अधिनियम (1919 ई.)..... 659**
❖ अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियां..... 659
➲ **माण्टेग्यू की घोषणा (20 अगस्त, 1917)..... 660**
❖ माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट..... 661
➲ **भारत शासन अधिनियम 1919 ..... 661**
❖ अधिनियम की मुख्य विशेषताएं 661
❖ भारत शासन अधिनियम 1919 की आलोचना..... 663
❖ अधिनियम 1919 की समीक्षा..... 663
➲ **भारत सरकार अधिनियम, (1935 ई.)----------663**
➲ **अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियां..... 664**
➲ **अधिनियम के मुख्य उपबंध..... 664**
❖ भारत शासन 1935 अधिनियम का क्रियान्वयन..... 665
❖ अधिनियम का मूल्यांकन..... 666

12. प्रथम विश्व युद्ध से गोलमेज सम्मेलन तक..... 667 – 687

1. होमरूल आन्दोलन का उदय..... 667
2. कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के बीच 1916 का समझौता. 668
3. क्रान्तिकारी आन्दोलन का पुनरुत्थान..... 668
4. खिलाफत आन्दोलन का जन्म..... 668
5. राष्ट्रवाद का प्रसार..... 668

❖ माण्टेग्यू घोषणापत्र की पृष्ठभूमि..... 668
➲ **गांधीवादी युग..... 670**
❖ महात्मा गांधी का जीवन परिचय (1869-1948 ई.).. 670
❖ गांधी के जनांदोलनों का सैद्धांतिक आधार 671
❖ कार्यपद्धति (रणनीति) 671
❖ रचनात्मक कार्य..... 672
➲ **खिलाफत आन्दोलन..... 672**
❖ खिलाफत एवं असहयोग आंदोलन के बीच संबंध..... 673
❖ आन्दोलन के परोक्ष परिणाम..... 673
➲ **असहयोग आन्दोलन 1920-22..... 674**
❖ आन्दोलन की प्रगति..... 675
❖ असहयोग आन्दोलन का स्थगन..... 676
❖ असहयोग के अप्रत्यक्ष प्रभाव..... 676
➲ **स्वराज दल (मार्च 1923 ई)..... 676**
❖ स्वराज दल के उद्देश्य..... 677
❖ स्वराज दल की नीति में परिवर्तन..... 677
❖ स्वराज दल का पतन..... 678
➲ **साइमन कमीशन..... 678**
❖ साइमन कमीशन के उद्देश्य..... 678
➲ **नेहरू रिपोर्ट (1928 ई.)..... 680**
❖ नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव..... 680
➲ **जिन्ना के 14 सूत्री कार्यक्रम (मार्च 1929)..... 681**
➲ **सविनय अवज्ञा आन्दोलन..... 681**
❖ आन्दोलन की प्रगति..... 682
➲ **गोलमेज सम्मेलन..... 683**
❖ प्रथम गोलमेज सम्मेलन (12 नवम्बर, 1930-19 जनवरी, 1931)..... 683
❖ द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (7 सितम्बर, 1931 से 1 दिसम्बर, 1931) ई..... 684
➲ **मैकडोनाल्ड अवार्ड तथा पूना पैक्ट..... 685**
❖ सांप्रदायिक पंचाट (16 अगस्त, 1932) ई..... 685
❖ पूना पैक्ट (24 सितंबर, 1932) ई..... 686
❖ तीसरा गोलमेज सम्मेलन (17 नवम्बर, 1932 से 24 दिसम्बर, 1932) ई..... 686
➲ **श्वेत-पत्र** (The white paper-March 1933) ----686
❖ आन्दोलन का अंत 686
❖ प्रांतीय चुनाव (1937 ई.) 686

13. राष्ट्रीय आंदोलन में अन्य विचारधाराएं..... 688 – 697

➲ **क्रांतिकारी आन्दोलन..... 688**
❖ महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी अभियान..... 688
❖ बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन 688
❖ हावडा षडयंत्र केस (1910)..... 689
❖ पंजाब तथा दिल्ली में क्रांतिकारी कार्रवाइयां..... 689
❖ राजस्थान में क्रांतिकारी आंदोलन..... 689
❖ भारत तथा विदेशों में गुप्त समितियों का गठन..... 689
➲ **विदेशों में क्रांतिकारी संगठन एवं कार्य..... 690**
❖ पत्र पत्रिकाएं..... 690
❖ क्रांतिकारियों पर हुए मुकदमे..... 690
❖ अफगानिस्तान..... 691
➲ **क्रांतिकारी आंदोलन का दूसरा चरण..... 691**
❖ अन्य क्रांतिकारी कार्यवाहीयां..... 691
❖ क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता के कारण..... 692
➲ **वामपंथी आन्दोलन..... 692**
❖ भारत में वामपंथी आंदोलन के उदय के कारक..... 693
➲ **साम्यवादी दल** (The Communist Party)-------693
➲ **कांग्रेस समाजवादी दल..... 695**
➲ **ट्रेड यूनियन आन्दोलन..... 696**
❖ श्रमिक संघों का उदय..... 696

14. द्वितीय विश्व युद्ध से स्वतंत्रता प्राप्ति तक ..... 698 – 711

➲ **अगस्त प्रस्ताव (The August offer 8 August, 1940) -----698**
❖ व्यक्तिगत अवज्ञा और बारदोली अधिवेशन (17 अक्टूबर, 1940 ई.) 699
❖ 1942 का क्रिप्स शिष्टमंडल..... 699
➲ **भारत छोड़ो आन्दोलन (1942 ई.)..... 699**
❖ अगस्त क्रान्ति..... 699
❖ आंदोलन की प्रगति..... 700
❖ निष्कर्ष..... 700
➲ **आजाद हिंद फौज आन्दोलन 700**
❖ आजाद हिंद फौज पर मुकदमा (नवंबर 1945)..... 701
➲ **राजगोपालाचारी योजना और जिन्ना..... 702**
❖ सी.आर. फार्मूला (10 जुलाई, 1944)..... 702
➲ **वैवेल योजना और शिमला सम्मेलन..... 702**
❖ वेवेल योजना (19 जून 1945 ई.) 702
❖ शिमला सम्मेलन (25 जून, 1945 ई.)..... 703

➲ **शाही नौसेना का सशस्त्र विद्रोह (8 फरवरी से 23 फरवरी 1946 ई.)** **703**
- ❖ नौसेना विद्रोह का महत्व 704

➲ **इग्लैंड एवं भारत में चुनाव** **704**

➲ **स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायक तत्व** **707**

➲ **राष्ट्रीय आन्दोलन के वैचारिक आयाम** **708**

➲ **गांधीवादी युग के प्रमुख नेताओं का योगदान** **710**
- ❖ सुभाष चन्द्र बोस (1897-1945) 710
- ❖ अबुल कलाम आजाद (1888-1958) 710

15. भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में अलगाववादी प्रवृत्तियां.. 712 – 716

➲ **सांप्रदायिकता का उदय और विकास** **712**

➲ **सर सैयद अहमद खान** **713**
- ❖ सैयद अहमद के बाद 714

➲ **सांप्रदायिकता का उदय** **714**

➲ **विभाजन का उत्तरदायित्व** **716**

16. भारत की स्वतंत्रता से 1964 ई. तक.....717 – 729

➲ **संसदीय, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य (1950 ई. का संविधान)** **717**
- ❖ संविधान के स्रोत 717
- ❖ संविधान का निर्माण 718
- ❖ स्वाधीन भारत का पहला मंत्रिमंडल 719
- ❖ संविधान की रचना 719

➲ **जवाहरलाल नेहरू का विकासवादी, समाजवादी दर्शन...** **720**
- ❖ योजना व्यवस्था 721
- ❖ मिश्रित अर्थव्यवस्था 721

➲ **राज्य नियंत्रित औद्योगीकरण** **721**
- ❖ सरकार की 1948 ई. की औद्योगिक नीति 721
- ❖ 1956 ई. की औद्योगिक नीति 722
- ❖ औद्योगिक प्रणालियों की समिक्षा के लिए एस. दत्त समिति 722

➲ **कृषि सुधार** (Agrarian Reforms) ----------723
- ❖ तकनीकी व्यवस्था में सुधार 723
- ❖ संरचनात्मक सुधार 723
- ❖ संस्थागत व्यवस्था में सुधार अथवा भू-सुधार 724

➲ **भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम** **724**
- ❖ भूमि सुधार कार्यक्रम की वर्तमान स्थिति 725

➲ **गुटनिरपेक्षता** **726**
- ❖ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रकृति 727
- ❖ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का उदय 727

➲ **भारत की विदेश नीति** **728**
- ❖ गुट निरपेक्षता के सिद्धांत पर आधारित विदेश नीति .. 728

17. भारतीय रियासतें ..... 730 – 735

➲ **कंपनी और भारतीय रियासतें** **730**

➲ **देशी रियासतों में स्वतंत्रा के संघर्ष** **732**

18. 1947 से 2009 तक का इतिहास.....736 – 746

➲ **राज्यों का भाषावाद पुनर्गठन** **736**
- ❖ राज्य पुर्नगठन एक्ट 1956 737

➲ **क्षेत्रीयतावाद एवं क्षेत्रीय असमानता** **738**

➲ **राष्ट्रीय भाषा** **740**
- ❖ संविधान में हिन्दी 741
- ❖ हिन्दी और अंग्रेजी भाषा विवाद 742

➲ **1947 के बाद नृजातित्व** **742**
- ❖ नृजातित्व एवं सामाजिक परिवर्तन 742

➲ **पिछड़ी जातियां** **743**
- ❖ मंडल आयोग एवं पिछड़ी जातियों की राजनीति 743

➲ **जनजातियां** **743**
- ❖ स्वतंत्रता के बाद अनुसूचित जनजाति 743

➲ **दलित आंदोलन** **744**
- ❖ अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम अधिनियमित (2008) 745

➲ **1947 के बाद जाति** **746**
- ❖ 1947 के बाद जाति व्यवस्था एवं उसका रूपांतरण.... 746
- ❖ जाति व्यवस्था के आर्थिक पक्षों में परिवर्तन 746

❖❖♦❖❖

आधुनिक भारत

अध्याय 1

यूरोपवासियों का प्रवेश

भारत तथा यूरोप के व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीनकाल से ही प्रगाढ़ रहे हैं। विशेषकर रोमन लोगों के साथ दक्षिण तथा पश्चिमी भारत का काफी घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रहा है, जिसके पुरातात्त्विक प्रमाण भी हमें प्राप्त होते हैं। सातवाहनों तथा चोलों के शासनकाल में भारत का समुद्री व्यापार काफी उन्नत रहा था। पश्चिमी तट पर भड़ौच (बेरीगाजा), सूरत, चौल आदि बन्दरगाह थे। इनमें आधुनिक **भड़ौच** को, जिसे भारतीय स्रोतों में **'भरुकच्छ'** कहा गया है, पश्चिमी तट पर सबसे प्राचीन एवं सबसे बड़ा प्रवेश द्वार था और पश्चिमी एशिया के साथ अधिकांश व्यापार इसी के माध्यम से होता था।

यहाँ से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में मसाले, हीरे, नीलम, रत्न, कछुए की पीठ की हड्डियाँ आदि प्रमुख थीं। **ईसा पूर्व पहली सदी** में लिखित **'पेरिप्लस ऑफ दी एरीथ्रियन सी'** में पूर्वी तट पर स्थित अरिकमेडु को **पेडोका** कहा गया है। **अरिकामेडु में 1945** ई. में एक विस्तृत खुदाई में एक विशाल **रोमन बस्ती मिली**, जो एक व्यापारिक केन्द्र था, यहाँ रोम निवासियों की रुचि तथा उनके द्वारा दिए गये नमूनों के आधार पर निर्माण कार्य भी होता था। यहाँ **रोमन सम्राट अगस्ट टाइबेरियस** तथा **नीरो के सोने के सिक्के** भी मिले हैं।

अगले चरण में यूरोप में पूर्वी देशों के माल की माँग में वृद्धि बारहवीं शदी में धर्मयुद्धों (The Crusades) के काल में हुई। यूरोप में पूर्वी देशों के मसालों की माँग निरन्तर रहती थी, क्योंकि जाड़े में चारे के अभाव के कारण जानवरों को मारकर उनके माँस को नमक लगाकर सुरक्षित कर लिया जाता था, जिसे स्वादिष्ट बनाने के लिए मसालों की जरूरत पड़ती थी। पन्द्रहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शती के बीच में यूरोपवासियों की साहसिक समुद्री यात्राओं के फलस्वरूप भौगोलिक अनुसंधानों के अन्तर्गत भारत के लिए नए समुद्री मार्ग की खोज हुई।

पुर्तगालियों का आगमन

1488 ई. में अफ्रीकी महाद्वीप के दक्षिणी किनारे **केप ऑफ गुड होप** तक पहुँच गया। वहां से वास्कोडिगामा 1497 ई. में मालीन्दी तक तथा **1498 ई.** में एक अरब व्यपारी की सहायता से कालीकट तक पहुँचाया। जब उससे, उसके आने अक उद्देश्य पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि वह भारत में इसाई धर्म के प्रचार तथा गर्म मसाले के व्यापार के लिए आया है। इस प्रकार **1498** में, इस नए समुद्री मार्ग की खोज का श्रेय वास्कोडिगामा को जाता है।

पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में पुर्तगाल के शासक **डॉन हेनरीक** जिसे **'हेनरी द नेवीगेटर'** (Henry the Navigator) कहा जाता था, ने सीधे भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज प्रारम्भ की थी।

इसके पीछे दो उद्देश्य थे, **प्रथम** अरबों एवं अपने यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धियों यानि वेनिस तथा जेनेवा के व्यापारियों को समृद्ध पूर्वी व्यापार से बाहर करना तथा **दूसरा,** अफ्रीका एवं एशिया के काफिरों (गैर ईसाइयों) को ईसाई बनाकर तुर्की एवं अरबों की बढ़ती हुई शक्ति को संतुलित करना। वास्तव में ये दोनों लक्ष्य एक दूसरे के पूरक और समर्थक थे।

1453 ई. में तुर्कों द्वारा एशिया माइनर के जरिए यूरोप के पूर्वी देशों के साथ व्यापार (खासकर मसालों के) पर रोक लगा दी थी। इस रोक के कारण भी नए समुद्री मार्ग की खोज अनिवार्य हो गयी थी। **यूरोप में पुनर्जागरण** की वजह से भी समुद्री यात्राएँ प्रेरित हुई। इसके साथ ही **कुतुबनुमा** (Mariner's Compass) के आविष्कार तथा यह धारणा की पृथ्वी गोल है एवं पश्चिम की ओर चलकर पूर्व की ओर पहुँचा जा सकता है, इन सभी बातों ने मिलकर साहसिक समुद्री यात्राओं तथा उसके फलस्वरूप विभिन्न समुद्री भागों तथा भौगोलिक खोजों का मार्ग प्रशस्त किया।

1487 ई. में बार्थोलोम्यू डीयाज (Bartholomew Diaz) आशा अंतरीप (Cape of Good hope) पहुँचा तथा उसे तूफानी अंतरीप कहा।

पुर्तगाल की तरह ही प्रारम्भिक दौर में स्पेन की सरकार ने भी साहसिक समुद्री यात्राओं को सहायता दी। **1494 ई. में स्पेन के कोलबंस** ने उत्तरी अमेरिका की खोज की, लेकिन वास्तव में वह भारत की खोज के लिए निकला था।

1498 ई. को वास्को-डी-गामा ने यूरोप से भारत तक का पूरी तरह से समुद्री तथा एक नये मार्ग से यात्रा करते हुए भारत के पश्चिमी तट के कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचा। उसने **'केप आफ गुड होप'** होते हुए अफ्रीका का पूरा चक्कर लगाते हुए यह यात्रा पूरी की थी। इस व्यापारिक यात्रा का तात्कालिक महत्त्व भले ही इतना दिखा हो कि वास्को-डी-गामा ने इस यात्रा से लौटते वक्त जो वस्तुएं यूरोप ले जाकर बेचीं, उनका मूल्य उसकी यात्रा खर्च से **60 गुना अधिक** था। लेकिन बाद में इस यात्रा के ऐतिहासिक परिणाम यूरोपवासियों के एशिया पर प्रभुत्व के रूप में सामने आये।

व्यापार की प्रकृति एवं स्वरूप: 15वीं सदी के मध्य में अफ्रीका में यूरोपीय देशों ने प्रवेश किया तो उन्हें प्रारंभिक पूँजी निर्माण का एक प्रमुख स्रोत प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में वहाँ हाथी दाँत तथा सोना व बाद में गुलामों का व्यापार प्रमुख तत्व बन गया। विशेषकर 1650 ई. के बाद काफी वर्षों तक अफ्रीकियों को गुलाम बनाकर उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में बेचा जाता रहा।

अध्याय 2

ब्रिटिश विस्तार एवं नवीन राज्यों का उत्थान

व्यापार पर कब्जा के लिए अंग्रेजी एवं फ्रांसीसी कम्पनियां भारत की राजनीति में उलझ गयी। 20 वर्षों तक लम्बे संघर्ष में फ्रांस की हार हुई। और अंग्रेजों को भारत की सत्ता मिली।

कर्नाटक युद्ध

1700–1740 ई. के बीच ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार एवं प्रभाव का विस्तार शांतिपूर्ण एवं क्रमिक था। **1717 ई. के फर्रुखसियर** के फरमान के परिणास्वरूप इन्हें हैदराबाद के पूरे सूबे में पहले से मिलने वाली चुँगी की छूट, कायम रही। इन्हें मात्र मद्रास का किराया देना पड़ता था। मद्रास में 'अंग्रेजों का शान्तिपूर्ण व्यापार' चलता रहा।

कोरोमंडल समुद्र तट तथा इसके पीछे की भूमि को यूरोपियों ने कर्नाटक नाम दिया। अंग्रेज कर्नाटक के नवाब और इसके अधिपति दक्कन के सूबेदार, दोनों ही के साथ मधुर संबंध बनाये हुए थे। मद्रास के गवर्नर टामस पिट (1698–1709) ने 1708 ई. में कर्नाटक के नवाब से मद्रास के निकट पाँच नगर प्राप्त किये। 1717 ई. में कंपनी ने वेपरी (Vepery) और अन्य चार छोटी बस्तियाँ भी प्राप्त कर ली।

दक्षिणी भारत में यूरोपियों के शक्तिशाली होने के कारण: अठारहवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में, जब मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर था, अंग्रेज फिर से **क्षेत्रीय विजय एवं राजनीतिक अधिकार** की योजनाएँ बनाने लगे। पश्चिमी भारत में मराठों की सुदृढ़ स्थिति ने इनकी इस क्षेत्र में घुसपैठ की सम्भावना नहीं रहने दी। यही स्थिति कमोवेश पूर्वी-भारत में, विशेषकर बंगाल में **अलीवर्दी खाँ** के कठोर प्रशासन के कारण थी। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय क्षत्रपों की आन्तरिक अवनति भी दिखायी पड़ती है।

दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति यूरोपीय कंपनियों के अनुकूल होती जा रही थी। मुगल साम्राज्य के पतन की ओर अग्रसर होने से केन्द्रीय सत्ता समाप्त हो गयी। **1748 ई. में निजामुलमुल्क** आसफजाह का मजबूत नियंत्रण भी समाप्त हो गया। मराठों ने इसका लाभ उठाया। वे दक्षिण भारत तथा हैदराबाद से नियमित रूप से चौथ वसूलने लगे थे। अत: राजनीतिक एवं प्रशासनिक अनिश्चितता बढ़ गयी थी। उस समय कर्नाटक, दक्कन के सूबेदार के अधीन एक प्रान्त था जिसका शासन एक प्रान्तपति, जो नवाब कहलाता था, करता था। इसकी राजधानी अरकाट में थी। जिस तरह से हैदराबाद के निजाम-उल-मुल्क आसफजाह ने अपनी स्थिति व्यावहारिक तौर पर स्वतंत्र कर ली थी, उसी तरह अरकाट के नवाब भी स्वतंत्र शासक की तरह ही बर्ताव करने लगा था। उसका नाममात्र का अधिपति निजाम, मराठों तथा उत्तर भारत के कार्यों में इतना अधिक व्यस्त हो गया कि वह कर्नाटक पर अपना नियंत्रण नहीं रख सका।

1740 ई. में मराठों ने कर्नाटक को लूटा तथा नवाब दोस्त अली को मारकर उसके दामाद चँदा साहब को बन्दी बनाकर सतारा ले गये। दोस्त अली के पुत्र सफदर अली ने मराठों को एक करोड़ रुपये देने का वादा करके अपने जीवन तथा राज्य की किसी तरह रक्षा की। लेकिन तुरन्त ही उसके एक चचेरे भाई ने उसकी हत्या करके उसके (सफदर अली के) अल्प वयस्क पुत्र को नवाब घोषित किया।

1743 ई. में निजाम ने वहाँ व्यवस्था बहाल करने के लिए अपने कर्मचारी अनवरुद्दीन खाँ को नवाब घोषित किया। इससे स्थिति पहले से भी बदतर हो गयी क्योंकि नवाब दोस्त अली के संबंधियों द्वारा, जो अभी भी बहुत किलों और विस्तृत जागीरों के मालिक थे, वह अवश्य ही अनधिकार प्रवेश करने वाला और प्रतिद्वन्द्वी माना जाने वाला था।

कर्नाटक में चल रही राजनीतिक उठा-पटक से अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी बस्तियाँ अपने को काफी पृथक रख शांतिपूर्वक व्यापार में लगी रहीं, जब तक कि इन आपस में लड़ने वाले दलों में से किसी ने उनके व्यापार में कोई गंभीर हस्तक्षेप नहीं किया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746–48)

कारण: यूरोप में 1740 ई. में इंग्लैण्ड **आस्ट्रियाई उत्तराधिकार** के युद्ध में फँस गया। इस युद्ध में इंग्लैण्ड तथा फ्रांस एक-दूसरे के विरोधी पक्ष में थे। ये दोनों नीदरलैण्ड में करीब 8 सालों तक लड़ते रहे। 1743 ई. में फ्रांस ने स्पेन से मिलकर, अमेरिका तथा भारत में इंग्लैण्ड से युद्ध किया।

प्रारम्भ में फ्रांसीसी अधिकारियों ने भारत में तटस्थ रहने का प्रयास किया। **पांडिचेरी के फ्रेन्च गवर्नर डुप्ले** (Dupleix) ने मद्रास के अंग्रेज गवर्नर मोर्स से सीधी बातचीत करने का निर्णय लिया। लेकिन इंग्लैण्ड के अधिकारियों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में अंग्रेज व्यापारी युद्ध के पक्ष में नहीं होते हुए भी तटस्थता की गारन्टी नहीं दे सकने के लिए मजबूर थे।

1746 ई. में **बर्नेट के** नेतृत्व में अंग्रेजी नौसेना ने फ्रांसीसी जहाजों पर अधिकार कर युद्ध का प्रारम्भ किया। इस आक्रमण का उचित प्रत्युत्तर देने के लिए फ्रांसीसी लोगों के पास, भारतीय समुद्र में कोई भी जहाजी बेड़ा नहीं था। इसलिए डुप्ले ने मौरीशस के फ्रेन्च गवर्नर ला-बूर्दने (La Bourdonnais) से बचाव तथा सहायता के लिए प्रार्थना की। **ला बूर्दने** आठ जहाजों के छोटे बेड़े के साथ भारत आया। उसके आने से युद्ध की स्थिति फ्रांसीसियों के अनुकूल हो गयी। ला-बूर्दने अपने 3,000 सैनिकों के साथ कोरोमंडल तट पर आया। रास्ते में उसने अंग्रेजी नौसेना को परास्त किया।

अध्याय 3

भारत में ब्रिटिश राज की आरंभिक संरचना

1757 ई. में प्लासी के युद्ध के बाद भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। कम्पनी को संधि द्वारा कई विशेषाधिकार दिये गये। इसी क्रम में 1764 ई. की बक्सर की लड़ाई के बाद क्लाइव ने बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना की। इलाहाबाद की संधि एक फरमान द्वारा बंगाल (जिसके अन्तर्गत बिहार और उड़ीसा भी थे) की दीवानी कम्पनी को दी गयी। इसके द्वारा कम्पनी को इन प्रांतों में कर वसूलने और दीवानी न्याय की व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया। वहीं दूसरी संधि के द्वारा कम्पनी को **'निजामत'** भी दे दी गयी। इस प्रकार कम्पनी को **दीवानी और निजामत** दोनों कार्य सौंप दिये गये, अर्थात प्रभुसत्ता कम्पनी के हाथ में आ गयी और नवाब नाममात्र के लिए रह गए।

द्वैध शासन योजना

इसके अन्तर्गत शासन कार्य का कानूनी उत्तरदायित्व नवाब और उसकी सरकार पर था। लेकिन वास्तविक शक्ति कम्पनी के हाथ में थी।

इस प्रकार बंगाल में दो सरकारें थी। नवाब की सरकार जिसे कानूनी सत्ता (De Jure Sovereignty) प्राप्त थी और कम्पनी की सरकार जिसके हाथ में वास्तविक सत्ता (Defacto sovereignity) थी। क्लाइव की व्यवस्था के अनुसार कम्पनी ने दीवानी का कार्यभार जिसमें भूमिकर, सीमा शुल्क लेना तथा दीवानी कानून व्यवस्था सम्मिलित थी, उप दीवान को सौंप दिया।

बंगाल के लिए मुहम्मद **रज़ा खाँ** और बिहार के लिए **राजा सिताब राय** अब उप-दीवान थे। अपने-अपने प्रदेश का प्रशासन नाम के लिए ही मुगल सम्राट और बंगाल के नवाब चलाते थे, परन्तु वास्तव में यह प्रशासन केवल अंग्रेजी कम्पनी के हितों के लिए ही किया जाता था। इस काल में जो लूट मची संभवतः भारत में ऐसी लूट पहले कभी नहीं मची थी।

यह द्वैध प्रणाली 1765 से 1772 तक (1765 से 1767 **क्लाईव**, 1767-69 **वेरेलस्ट** तथा 1769-72 कार्टियर के काल तक) चलती रही।

द्वैध शासन के दोषः इसके दोषों को संक्षेप में निम्न रूप से समझा जा सकता हैः

I. इस व्यवस्था में उत्तरदायित्व को शक्ति से पृथक कर दिया गया था। फलतः यह अतार्किक और अव्यावहारिक हो गया।
II. कर्मचारियों ने राजनीतिक सत्ता का दुरुपयोग कर बहुत धन कमाया। व्याभिचार और बेइमानी अपनी परकाष्ठा पर पहुंच गयी।
III. भारतीय व्यापार तथा उद्योग को गहरा धक्का पहुंचा। विदेशी व्यापारियों को विशेष छूट दी गयी, जिसके कारण भारतीय व्यापारी उनके साथ प्रतिद्वन्द्विता में नहीं टिक सके।
IV. द्वैध सरकार के चलते देशी न्याय व्यवस्था समाप्त हो गयी।
V. कम्पनी को युद्ध और सेना पर बहुत खर्च करना पड़ा, जिससे उसकी आर्थिक दशा खराब हो गयी।

रेग्युलेटिंग एक्ट-1773 ई.

एक्ट पारित होने के कारण

I. कम्पनी की प्रादेशिक प्रभुसत्ताः प्लासी और बक्सर के युद्धों के परिणामस्वरूप कम्पनी का राज्य बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थापित हो गया। यह पहला अवसर था कि इंग्लैंड की एक गैर सरकारी कम्पनी ने इतने बड़े क्षेत्र पर अधिकार स्थापित किया हो। कम्पनी के क्षेत्राधिकार ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष एक अनोखा तथा विरोधी प्रश्न खड़ा कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी एक साधारण निजी कंपनी नहीं थी, **बल्कि पूर्वी एशिया में यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व करती थी।** अतः भविष्य में ब्रिटिश साम्राज्य को किसी प्रकार की बदनामी से बचाने के लिए तथा उनके हितों की रक्षा के लिए कम्पनी के मामलों में संसद द्वारा हस्तक्षेप करना आवश्यक तथा अवश्यंभावी हो गया था।

II. द्वैध शासन व्यवस्थाः द्वैध शासन व्यवस्था ने स्थिति को और भी बुरा बना दिया। यह गंभीर त्रुटियों से भरा हुआ था तथा दोषपूर्ण शक्ति विभाजन पर आधारित था। कुशासन अपनी चरम सीमा पर था तथा दमन और शोषण आम बात थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार का चुपचाप बैठा रहना संभव नहीं था।

III. कम्पनी का दिवालापनः शुरू में कम्पनी से अंग्रेजों को काफी मुनाफा हुआ। लेकिन धीरे-धीरे इसके हिस्सेदारों को निराशा हाथ लगी क्योंकि कम्पनी घाटे में चली गयी। यह ब्रिटिश सरकार को **4 लाख पौंड वार्षिक कर देने में असमर्थ हो** गयी, साथ ही सरकार से कर्ज की भी मांग की। इस बिगड़ती हुई स्थिति को सुधारने के लिए ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो गया।

IV. अप्रिय घटनाएंः इसी समय कम्पनी के जीवन से दो अप्रिय घटनाएं घटीं। **1769 ई. में मैसूर के हैदरअली के हाथों कम्पनी को मुंह की खानी पड़ी** तथा **1770 ई. में बंगाल में भयंकर अकाल** पड़ा। इससे कम्पनी की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इसके अलावा इंग्लैंड में भी जनता कम्पनी के मामलों पर संसदीय नियंत्रण की मांग कर रही थी।

V. कम्पनी के कार्यों की संसदीय जांचः सरकार ने कम्पनी की जांच के लिए एक चयन समिति तथा एक गुप्त समिति नियुक्त की। दोनों ने कंपनी के विरुद्ध रिपोर्ट की। कंपनी की बुराइयों को

अध्याय 4

ब्रिटिश राज का आर्थिक प्रभाव

औपनिवेशिक नीति

भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना ने न केवल सामाजिक व राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया, बल्कि भारत की आर्थिक व्यवस्था भी इससे बुरी तरह प्रभावित हुई। भारत के विशाल साम्राज्य को हथिया लेने के बाद इस पर नियंत्रण रखने और प्रशासन चलाने के लिए ईस्ट इंडिया कंम्पनी को उपयुक्त तरीके अपनाने पड़े।

1757 ई. से 1857 ई. की लंबी अवधि के दौरान कम्पनी की प्रशासनिक नीति अक्सर बदलती रही, फिर भी इसने अपना मुख्य लक्ष्य कभी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। वे लक्ष्य थे- कम्पनी के मुनाफे में बढ़ोत्तरी, भारत पर अधिकार को ब्रिटेन के लिए फायदेमंद बनाना तथा भारत पर ब्रिटिश पकड़ को कायम रखना और इसे सुदृढ़ करना। इसके अतिरिक्त जितने भी उद्देश्य थे, वे इन उद्देश्यों की मदद के लिए थे।

भारत सरकार का प्रशासनिक ढांचा इन्हीं लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बनाया और विकसित किया गया था। इस मामले में मुख्य जोर कानून और व्यवस्था को बनाये रखने पर दिया जाता था, ताकि बिना व्यवधान के भारत के साथ व्यापार किया जा सके और इसके संसाधनों का दोहन किया जा सके। ब्रिटिश साम्राज्यवादी औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों को प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और विद्धान श्री आर. पी. शास्त्री ने निम्न तीन भागों में बांटा है।

1. **वाणिज्यिक पूंजीवाद (Mercantalism) का काल** - 1757 ई. से 18वीं शताब्दी के अंत तक।
2. **स्वतंत्र व्यापारिक पूंजीवाद का काल** (Free Trade Capitalism) जो 19वीं शताब्दी में विकसित हुआ।
3. **वित्तीय पूंजीवाद का काल** (Finance Capital) 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों से 1947 तक।

यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक चरण अपने से पूर्व की परिस्थितियों के कारण विकसित हुआ और साम्राज्यवादी शोषण की भिन्न-भिन्न पद्धतियां प्राय: एक दूसरे पर आच्छादित हो जाती थीं, जिससे कि शोषण की पहली प्रणाली समाप्त होने से पहले ही वह शोषण के नये ढांचे में ढल जाती थी।

1. वाणिज्यिक पूंजीवाद के चरण (1757 से 1813 ई): 1600 ई. से 1757 ई. तक भारत में ईस्ट ईंडिया कम्पनी की भूमिका एक ऐसे व्यापारिक निगम की थी जो **भारत में माल या बहुमूल्य धातुएं लाता था तथा उसके बदले कपड़े, मसाले आदि भारतीय माल लेकर उन्हें विदेशों में बेचता था।**

इसके मुनाफे का मुख्य स्त्रोत विदेशों में भारतीय माल का विक्रय था। इस प्रकार इसने भारतीय मालों का निर्यात बढ़ाया तथा उसके उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। यही कारण था कि भारतीय शासक भारत में कम्पनी द्वारा फैक्ट्रियों की स्थापना को प्रोत्साहन देते थे। परंतु भारत के साथ कम्पनी के व्यापारिक संबंधों में **1757 ई. के प्लासी युद्ध के बाद गुणात्मक परिवर्तन आया।**

कम्पनी का बंगाल के साथ व्यापार तथा छूट का एक विशेष युग प्रारंभ हुआ। यह वणिकवाद का युग था। वणिकवाद का मूलभूत आधार यह था कि समस्त आर्थिक कार्यविधि को राष्ट्र के हित में तथा शक्तिशाली बनाने के लिए नियमित किया जाना चाहिए। यह 16वीं से 18वीं शताब्दी तक बहुत लोकप्रिय सिद्धांत था।

व्यापारिक कम्पनियां यह उद्देश्य निम्न तीन प्रकार से प्राप्त करती थी:

उद्देश्य

1. व्यापार पर एकाधिकार हो और सभी प्रतिद्वंद्वी समाप्त कर दिये जायें।
2. वस्तुएं कम से कम मूल्य पर खरीदी जाएं और अधिकाधिक मूल्य पर बेची जाए।
3. उपर्युक्त उद्देश्य तभी पाये जा सकते थे यदि व्यापार किये जाने वाले देश पर राजनीतिक नियंत्रण भी हो।

परिणाम: 1757 ई. में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का बंगाल पर नियंत्रण हो गया तो उसे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना मुश्किल नहीं रहा। कम्पनी ने भारतीय मालों का निर्यात बढ़ाने के लिए बंगाल के राजस्व का भी उपयोग किया।

अपनी राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके बंगाल के **बुनकरों पर अपनी शर्तें लाद दीं** और उन्हें माल कम कीमत और कभी कभी घाटे पर भी बेचने को मजबूर किया। अब उनकी मेहनत भी आजाद नहीं रही। कम्पनी ने **देशी और विदेशी प्रतिद्वंद्वियों को बाहर** कर दिया तथा बंगाल के दस्तकारों को अधिक मजदूरी या दाम देने से उन्हें रोके रखा।

कम्पनी ने कच्चे कपास की बिक्री पर भी एकाधिकार कर लिया और बंगाल के बुनकरों से मनमाने दाम वसूलने लगे। साथ ही, इंग्लैंड में भारतीय वस्त्रों पर **भारी आयात- शुल्क भी देने** पड़ते थे। इस प्रकार इस काल में कम्पनी ने बंगाल के व्यापार पर पूर्णत: अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।

2. स्वंतत्र व्यापारिक पूंजीवाद का काल (1813-1857 ई.): ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने उसकी अर्थव्यवस्था तथा भारत के साथ उसके आर्थिक संबंधों को पूरी तरह बदलकर रख दिया। औद्योगिक क्रांति के कारण उभरे उद्योगपतियों की दिलचस्पी ईस्ट इंडिया कंपनी की दिलचस्पी से बहुत भिन्न थी। भारतीय दस्तकारों के निर्यात पर एकाधिकार होने से या भारतीय धन के सीधे-सीधे दोहन से इस वर्ग को कोई लाभ नहीं मिला।

अध्याय 5

सांस्कृतिक समागम एवं सामाजिक परिवर्तन

18वीं-19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत पर आधिपत्य ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं की कुछ गंभीर कमजोरियों व खामियों को उभार कर सामने रख दिया। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों और आंदोलनों ने सामाजिक सुधार व पुनरुत्थान की दृष्टि से सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं में परिवर्तन लाना शुरू किया।

भारतीय पुनर्जागरण तथा सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन

19वीं सदी का भारत धर्म और समाज के क्षेत्र में कई उथल-पुथल भरी घटनाओं का गवाह बना। धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, अंध भाग्यवाद, अनेकानेक सामाजिक कुरीतियों, सड़ी-गली परम्पराओं और कूपमंडूकता में डूबा भारतीय समाज, अपनी ही विकृतियों के पंक में फंस कर जड़ हो चुका था। 18वीं सदी के प्रारंभ में वैभवशाली मुगल साम्राज्य के तिरोहित होने के साथ ही भारत आर्थिक विपन्नता के गर्त्त में समा गया। मुगल शासन की बागडोर धीमी होने के साथ ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के गोरे प्रभुओं का वर्चस्व भारतीय शासन व्यवस्था पर स्थापित होने लगा, जो मूलतः विदेशी प्रकृति के होने के कारण स्वाभाविक रूप से भारत की पतनोन्मुख सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों के प्रति तटस्थ और उदासीन रहे और लोक-कल्याण तथा सुधार संबंधी किसी भी प्रयत्नों से दूर रहे। इसका भारत के सामाजिक जीवन पर घातक प्रभाव पड़ा और 18वीं सदी के अंत होते-होते भारत दरिद्रता तथा पिछड़ेपन की अंतिम सीमा तक पहुंच गया।

लेकिन नई सदी के आगमन के साथ ही भारत में बौद्धिक और सांस्कृतिक हलचलें अंगड़ाईयां लेने लगीं। भारत के सामाजिक जीवन में इस नई लहर को महसूस किया जाने लगा। इन परिवर्तनों के लिए प्रेरणा अंग्रेजी शिक्षा के प्रवेश से मिली। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार और इसके साथ औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा के प्रचार-प्रसार ने भारतीयों को आत्मनिरीक्षण और आत्म-विश्लेषण के लिए प्रेरित किया।

भारतीय पुर्नजागरण को प्रेरित करने वाले कारक

19वीं सदी में भारत में **अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश** (मैकाले के प्रयत्न से) और उसके साथ आए उदार विचारों ने भारतीयों को आंदोलित किया और उन्हें युग-युगांतर की निद्रा से जगाया। अब श्रद्धा और विश्वास की जगह तर्क ओर निर्णय ने ले लिए, अंधविश्वास विज्ञान के सामने नतमस्तक हुआ, जड़ता का स्थान प्रगति ने लिया, सामाजिक रूढ़ियों पर तार्किक दृष्टिकोण आरूढ़ हुआ। भारतीयों में एक नवीन चेतना उद्भासित हुई, अतीत की विशिष्टताओं के प्रति सम्मान बढ़ा, आत्म सम्मान और आत्म गौरव की भावना जगी। ये सारे परिवर्तन इस सदी के धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों के परिणाम थे, जिसके **अग्रदूत अंग्रेजी शिक्षा** के प्रारंभिक जानकार और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के अध्येता **राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर** आदि सरीखे विद्वान और प्रगतिशील विचारक थे जिनके सामूहिक प्रयत्नों से भारतीय धर्म और समाज में नवोन्मेष का सूरज उदित हुआ। इसे ही भारतीय राष्ट्रीय जीवन में नवजागरण या पुनर्जागरण की संज्ञा दी गयी है।

19वीं सदी में भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन या पुनर्जागरण अनायास नहीं हुआ, वरन् यह विविध कारणों के समुच्चय की अपरिहार्य परिणति था। भारत पर पश्चिम की आधुनिक संस्कृति का प्रभाव और इस संपर्क के विरुद्ध भारतीय जनता की प्रतिक्रिया, उन ऐतिहासिक शक्तियों के प्रकार थे जिनके सम्मिलित प्रभाव ने सुधार आन्दोलनों का मार्ग प्रशस्त किया।

1813 ई. के पश्चात् ईसाई पादरियों का भारत में निर्बाध आगमन और उनके द्वारा स्थापित ईसाई मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू किया, तो इसके विरुद्ध हिन्दुओं की तीखी प्रतिक्रिया हुई और परिणामस्वरूप हिन्दुओं में भी संगठनों के माध्यम से धर्म सुधार के कार्य प्रारंभ हो गये।

इस सदी के धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों के उद्भव और विकास में प्रेस (छापाखाना) की भी महती भूमिका रही। प्रेस की स्थापना ने विचारों के आदान-प्रदान को सुगम और अबाध बनाया। अनेक समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि प्रकाशित होने लगीं जिससे भारतीयों को अपनी दुरावस्था का ज्ञान हुआ और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के साथ किए जानेवाले दुर्व्यवहार के प्रति लोगों में रोष जगा। इससे उनमें **आत्म-सम्मान** की, **सुरक्षा की भावना पैदा हुई** और वे अपने धर्म व समाज में सुधार के लिए सन्नद्ध हुए। इन आन्दोलनों के प्रस्फुटन में अंग्रेजी शिक्षा का भारत में प्रवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

अंग्रेजी भाषा ने पश्चिमी संस्कृति एवं सभ्यता से परिचय कराया। पश्चिम के स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र एवं राष्ट्रीयता जैसे प्रगतिशील विचारों ने भारतीयों को प्रभावित किया। रूसो, **जॉन स्टुअर्ट,** मिल आदि के विचारों और **मैजिनी, गैरीबाल्डी** जैसे महान राष्ट्रवादियों की जीवनियों को पढ़कर भारतीयों में नवीन चेतना व जागृति आई।

पश्चिम के **वैज्ञानिक ज्ञान, बुद्धिवाद** के सिद्धांत और **मानवतावाद** के सिद्धांतों का भारतीय जनमानस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे इस नूतन ज्ञान एवं सिद्धांतों की सहायता से अपने समाज के उन्नयन में लग गये। नए सामाजिक वर्ग-जैसे पूंजीपति वर्ग, श्रमजीवी वर्ग और आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग- पाश्चात्य विचारों व ज्ञान को अपनाकर देश का आधुनिकीकरण करना चाहते थे। इसमें उनके अपने हित भी निहित थे। इनका प्रभाव कालक्रम में अन्य सामाजिक वर्गों पर भी पड़ा।

अध्याय 6

महत्वपूर्ण गवर्नर जनरल एवं वायसराय

प्लासी और बक्सर के युद्धों ने बंगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना कर दी। यह कार्य क्लाइव द्वारा किया गया। उसने बंगाल के गर्वनर के पद पर कार्य करते हुए कंपनी की सत्ता को सुदृढ़ किया। यह कार्य उसने मुगल बादशाह और अवध के नवाब के साथ अलग-अलग **इलाहाबाद की संधि** के द्वारा किया। उसने बंगाल में द्वैध शासन की स्थापना के साथ-साथ कई महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार करने के भी प्रयास किये। किंतु 1767 ई. में उसके इंग्लैंड वापस चले जाने के पश्चात बंगाल की स्थिति काफी दयनीय हो गयी। कंपनी के कर्मचारी व्यक्तिगत हित साधने में लग गये, परिणामस्वरूप कंपनी की आर्थिक स्थिति भी दयनीय हो गयी।

इसी पृष्ठभूमि में वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गर्वनर बनाया गया। उसके भारत आगमन के साथ ही ब्रिटिश संसद ने रेग्युलेटिंग एक्ट पास कर कंपनी के संविधान और गर्वनर की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये, अब बंगाल का गवर्नर, गवर्नर जनरल के नाम से जाना गया। उसके अधिकार भी बढ़ा दिये गये। 1857 ई. तक भारत में ब्रिटिश शासन के प्रधान को गर्वनर जनरल के नाम से ही जाना जाता है। **1773 ई. से 1857 ई.** के मध्य वारेन हेस्टिंग्स, लार्ड कार्नवालिस, लार्ड वेलेजली, लार्ड विलियम बैटिंक और लार्ड डलहौजी जैसे प्रमुख गर्वनर-जनरल हुए जिन्होंने भारत में न सिर्फ अंग्रेजी **राज्य का विस्तार** किया एवं **पड़ोसी देशों से संबंध स्थापित किया,** बल्कि **प्रशासनिक** सुधारों के द्वारा ब्रिटिश राज्य की जड़ें भी मजबूत कीं थी।

रॉबर्ट क्लाइव (1744-1767 ई.)

बंगाल का गर्वनर

रॉबर्ट क्लाइव को 1744 ई. में उसे मद्रास भेजा गया। इस समय भारत में आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिद्वंद्विता उग्र रूप में था। क्लाइव ने इस मौके का लाभ उठाकर सेना को सहयोग देना प्रारंभ किया। कर्नाटक के प्रथम दो युद्धों में उसने भाग लिया।

पांडिचेरी और आर्काट की घेरेबंदी के समय उसकी वीरता, प्रतिभा और रणकुशलता ने उसे ख्याति के शिखर पर पहुंचा दिया, परंतु इसी बीच अस्वस्थता के कारण उसे इंग्लैंड लौटना पड़ा। 1755 ई. में **क्लाइव पुनः भारत आया।** इस बार वह मद्रास का गर्वनर बनकर आया था। **'काल कोठरी की दुर्घटना'** (Black Hole Episode) का समाचार सुनकर वह सेना लेकर फुल्टा पहुंचा। उसने **प्लासी के युद्ध** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1765 ई. में वह दूसरी बार गर्वनर बनकर भारत आया और उसने बंगाल में द्वैध शासन प्रथा की स्थापना के साथ-साथ अनेक प्रशासनिक उपाय भी किये। **1767 ई.** में वह वापस इंग्लैंड चला गया। वहां उस पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया गया। यद्यपि मुकदमे में उसकी विजय हुई तथापि अपमान ने उसे तोड़कर रख दिया। इसी अपमान के चलते उसने **1774 ई. में आत्महत्या कर ली।**

अवध व मुगल सम्राट से संधिः जब बक्सर विजय का समाचार इंग्लैंड पहुंचा तो सब का मत यह था कि जिस व्यक्ति ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव रखी है उसे ही उस साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए भेजा जाये। यहां आकर क्लाइव ने देखा कि उत्तर भारत की समस्त राजनैतिक प्रणाली अनिर्णयात्मक अवस्था में है।

अतः उसने सर्वप्रथम परास्त शक्तियों के साथ संबंध को निश्चित करने का फैसला किया। इसके लिए उसने अवध के नवाब शुजाउदौला एवं मुगल सम्राट शाह आलम के साथ अलग-अलग संधियां किया जिसे इलाहाबाद की संधि के नाम से जाना जाता है।

संधि की शर्तों के अनुसार अवध के नवाब ने **कड़ा और इलाहाबाद** के जिले **मुगल सम्राट शाह आलम** को देने का वादा किया। युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए उसने 50 लाख रुपये कम्पनी को देना स्वीकार किया। दूसरी तरफ मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी स्थायी रूप से कंपनी को सौंप दी। इस तरह क्लाइव ने बड़ी सूझबूझ के साथ अवध के नवाब और मुगल सम्राट दोनों को ही अंग्रेजों का आश्रित बना दिया।

द्वैध शासन की स्थापनाः क्लाइव ने बंगाल में जो व्यवस्था की वह दोहरा शासन या द्वैध शासन के नाम से विख्यात है। इसमें वास्तविक शक्ति तो कम्पनी के पास थी। परंतु प्रशासन का भार नवाब के कन्धों पर था। इस व्यवस्था के अनुसार धन पर तो कंपनी का पूरा अधिकार हो गया, किंतु प्रजा के प्रति उसका कोई कर्त्तव्य नहीं रहा। दूसरी तरफ नवाब के पास न धन था न सेना। फिर भी प्रजा का उत्तरदायित्व उसी पर था। यह व्यवस्था **1772 ई.** तक **वारेन हेस्टिंग्स** के आने तक चलती रही। इस व्यवस्था के द्वारा बिना किसी भारतीय शक्ति को नाराज किये कंपनी के हाथों में सारी शक्तियां आ गयीं और अंग्रेज व्यापारी प्रशासक बन गये। इस व्यवस्था ने बंगाल के व्यापार व उद्योग धंधे, कृषि, आदि सभी को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया और बंगाल की स्थिति दयनीय हो गयी।

प्रशासनिक सुधारः क्लाइव ने बंगाल के प्रशासन में कई आवश्यक सुधार भी किये। इन सुधारों के द्वारा क्लाइव कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता को दूर कर प्रशासनिक एवं सैनिक क्षमता बढ़ाना चाहता था।

इस क्रम में सर्वप्रथम उसने कंपनी के **कर्मचारियों को रिश्वत** या **उपहार लेने पर प्रतिबंध** लगा दिया। उसने इसके लिए कर्मचारियों से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करवाये।

अध्याय 7

ब्रिटिश राज्य की विदेश नीति

सिंध की विजय

प्लासी एवं बक्सर के विजय के उपरान्त विभिन्न गर्वनर जनरलों ने भारतीय रजवाड़ों के वैदेशिक संबंधों पर रोक लगा दी और स्वयं ब्रिटिश सरकारों ने विभिन्न पड़ोसी देशों से संबंध स्थापित किये, जो विभिन्न बदलती परिस्थिति के अनुरूप थे। 1818 ई. तक **पंजाब और सिंध को छोड़कर पूरा भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजों के नियंत्रण में आ चुका था।** इस पूरे क्षेत्र के एक भाग पर सीधे अंग्रेजों का शासन था और बाकी भाग पर अनेक भारतीय शासक राज्य कर रहे थे जिन पर अंग्रेजों का पूरा-पूरा जोर चलता था। पूरे भारत को जीतने का काम अंग्रेजों ने **1818 से 1857 ई. तक के काल में किया।**

सिंध और पंजाब भी जीत लिए गये तथा अवध, मध्य प्रांत और बहुत सारे छोटे-छोटे राज्यों का अधिग्रहण कर लिया गया। यूरोप और एशिया में अंग्रेजों और रूसियों की शत्रुता बढ़ रही थी और अंग्रेजों को भय था कि अफगानिस्तान या फारस के रास्ते रूसी भारत पर हमला कर सकते हैं। सिंध की विजय इसी का परिणाम थी। **रूस को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अफगानिस्तान और फारस में अपना प्रभाव बढ़ाने का फैसला किया।** उसने यह भी महसूस किया कि यह नीति तभी सफल हो सकेगी जब सिंध को ब्रिटिश नियंत्रण में लाया जाय। सिंध नदी के व्यापारिक उपयोग की संभावनाएं भी इस लालच का एक कारण थी।

18वीं शताब्दी में **सिंध पर कल्लौरा सरदारों** का आधिपत्य था। 1771 ई. में तालपुरों की एक बलूच जाति सिंध में आकर बस गई। इसी जाति के एक नेता **मीर फतह अली खां** ने 1783 ई. में कल्लौरा वंश को पदच्युत कर सत्ता हथिया ली। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भाइयों जिन्हें चार यार या चार मित्र कहा जाता था ने आपस में सिंध को बांट लिया तथा **'अमीर'** की उपाधि धारण कर ली। उन्होंने अपनी तीन शाखाएं स्थापित कीं, जिसके केन्द्र क्रमश: **हैदराबाद, खैरपुर** और **मीरपुर** थे। वे नाममात्र को अफगानिस्तान की अधीनता मानते थे।

सिंध के साथ अंग्रेज प्रारंभ से ही व्यापारिक संबंध कायम करना चाहते थे। उन्होंने वहां अपनी व्यापारिक कोठियां भी स्थापित कर ली थीं; परंतु 18वीं शताब्दी तक अनेक कारणों से उनके व्यापार की प्रगति नहीं हो सकी थी। फ्रांसीसी आक्रमण के समय अंग्रेजों को सिंध के महत्व का पता चला और वे सिंध की तरफ अपना ध्यान देना शुरू किये।

अंग्रेज और सिंध के आरंभिक संबंध: लॉर्ड मिंटो ने फ्रांसीसी डर के कारण **काबुल, फारस, लाहौर और सिंध में अपने दूत भेजे।** सिंध के अमीरों के संग **1809 ई. में** एक शाश्वत मित्रता की संधि की गयी और यह निश्चित हुआ कि फ्रांसीसियों को सिंध में बसने की आज्ञा नहीं दी जाएगी। इस संधि द्वारा कच्छ में जहां कंपनी और सिंध की सीमाएं मिलती थीं, सीमाएं निश्चित की गयीं। 1820 ई. में यह संधि फिर दुहराई गई। उसमें एक नयी धारा जोड़ी गयी कि सीमा की सुरक्षा भंग करने वाले उपद्रवियों को दबाने के लिए कड़ी कार्रवाई की जा सकती है। इस बीच पंजाब में रणजीत सिंह की शक्ति बढ़ती जा रही थी। पंजाब में अपनी स्थिति को सुदढ़ बनाने के पश्चात् उसने सिंध विजय की योजना बनायी। उसने 1831 ई. में विलियम बेंटिक से रोपड़ में भेंट के समय यह प्रस्ताव किया था कि 'आओ सिंध को जीत लें और आधा आधा बांट लें।' बेंटिक ने इस प्रस्ताव पर बातचीत करना स्वीकृत नहीं किया। वस्तुत: ऐसा कर **बेंटिक रणजीत सिंह के बढ़ते प्रभाव और महत्त्वाकांक्षाओं पर नियंत्रण रखना चाहता था।**

इस समय तक सिंध के व्यापारिक और नौगम्यता (Navigational) महत्व को अंग्रेज समझ चुके थे। इसके पश्चात् 1831 ई. में सर एलेक्जेंडर बर्न्स को लार्ड एलेनबरो ने जो उस समय बोर्ड ऑफ कंट्रोल के प्रधान थे, सिन्ध नदी की खोज के लिए भेजा। बहाना यह था कि वह रणजीत सिंह के लिए उपहार ले जा रहा है। बर्न्स सिंधु नदी के जलमार्ग से लाहौर पहुंचा। यद्यपि, सिन्ध के अमीरों ने इस कार्य का विरोध किया, तथापि अंतत: उन्हें परिस्थिति से समझौता करना पड़ा। सिंध से लाहौर तक के जलमार्ग की खोज बलूचों के लिए विपत्ति का सूचक था। सिंध के एक सैयद ने बर्न्स की नौकाओं को देखकर दु:ख प्रकट करते हुए कहा था, "बड़े दुर्भाग्य की बात है, सिंध अब गया, क्योंकि अंग्रेजों ने सिंध नदी के जो विजय का राजमार्ग है, देख लिया है।" कालांतर में उसकी यह उक्ति सत्य साबित हुई।

1832 ई. की संधि: 1831 ई. मे बैंटिक ने **कर्नल पोटिंगर** को सिंध के अमीरों के साथ एक व्यापारिक संधि पर बातचीत करने के लिए भेजा। सिंध के अमीर प्रस्तावित संधि से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने अफगानिस्तान से सहायता की मांग की, परन्तु निराश और विवश होकर **20 अप्रैल, 1832 ई.** को कंपनी के साथ एक संधि कर ली। इस संधि की शर्तें निम्न थीं:

1. अंग्रेज पर्यटकों और व्यापारियों को सिंध से आने-जाने की अनुमति होगी और सिंध नदी भी अंग्रेजी व्यापारिक उद्देश्यों के लिए खुली रहेगी, लेकिन इन मार्गों का उपयोग सैनिकों या फौजी सामान के आवागमन के लिए प्रतिबंधित होगा।
2. किसी अंग्रेज व्यापारी को सिंध में बसने की अनुमति नहीं होगी और अन्य पर्यटकों और दर्शकों को पासपोर्ट रखने होंगे।
3. अंग्रेजों ने सिंध से किसी प्रकार की सैनिक अथवा आर्थिक सहायता की मांग नहीं करने का आश्वासन दिया।
4. अमीरों ने जोधपुर के राजा के सहयोग से कच्छ के डाकुओं का अंत करने का वचन दिया।
5. दोनों पक्षों ने एक दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करने का भी वादा किया।

अध्याय 8

ब्रिटिश शासन का विरोध

विदेशी शासन के खिलाफ भारतीयों के संघर्ष की प्रथम घटना 1857 के विद्रोह के रूप में हुई, परन्तु यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के **औपनिवेशीकरण** तथा उसको दबाए रखने की लम्बी प्रक्रिया ने प्रत्येक स्तर पर भारतीय समाज में **असंतोष व क्षोभ** को जन्म दिया। जनता ने इसका प्रतिरोध किया। इन प्रतिरोधों को हम तीन भागों में बांट सकते हैं- नागरिक विद्रोह, आदिवासी विद्रोह और किसान आंदोलन।

नागरिक विद्रोह

सत्ताच्युत राजाओं और नवाबों या उनके उत्तराधिकारियों या अपनी जायदाद से बेदखल कर **दिये, गये जमींदारों,** भूस्वामियों और पोलिगारों में सरकार के प्रति आक्रोश था। इन विद्रोहों को जनाधार और शक्ति हमेशा शोषित किसानों, दस्तकारों और राजाओं व नवाबों की विघटित सेना के सिपाहियों से मिलती थी।

अंग्रेजों ने अपनी नीतियों व भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित परिवर्तन किये जिससे किसान व आदिवासी समाज पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा जैसे-

- मुफ्त व्यापार लागू करने और भारतीय उत्पादकों से मनमाने ढंग से लेवी वसूल किये जाने से भारतीय हथकरघा व हस्तशिल्प उद्योग का विनाश हुआ।
- भारत से इंग्लैंड की ओर धन की निकासी हुई।
- ब्रिटिश भू-राजस्व बंदोबस्त, नये करों का भारी बोझ, किसान का अपनी जमीन से निकाला जाना, आदिवासी भूमि पर कब्जा हुआ।
- राजस्व वसूली करने वाले बिचौलिये व महाजनों के उदय से ग्रामीण समाज का शोषण तेजी से बढ़ना।
- खेतों व जंगलों पर परम्परागत आदिवासी अधिकारों का दमन हुआ।
- नये कानून तंत्र व अदालतों की मदद से किसान की जमीन की बेदखली को बढ़ावा मिला।
- ब्रिटिश शासन का पूरा चरित्र ही विदेशी होना।
- दरबारों की कमी से धार्मिक नेता व बौद्धिक तबकों के लोगों को नुकसान हुआ।

विद्रोहों का स्वरूप

इन विद्रोहों के स्वरूप में समयानुसार बदलाव आया। 19वीं शताब्दी के विद्राहों के पीछे महज स्थानीय कारण व मुद्दे ही थे, इसलिए ये स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहे। कई स्थानीय विद्रोहों का चरित्र एक जैसा था, क्योंकि वे वहां की समान पृष्ठभूमि के कारण उत्पन्न हुए थे।

- 19वीं शताब्दी के किसान आंदोलन की ज्यादातर मांगें आर्थिक थीं और उनके उद्देश्य भी सीमित थे। उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध आवाज नहीं उठायी। उनका दायरा सीमित था तथा संघर्ष में न तो निरंतरता थी, न दीर्घकालीन संगठन। ये किसान बदलाव के लिए नहीं, बल्कि यथास्थिति बरकरार रखने के लिए लड़े, इसीलिए इनके प्रति अंग्रेजों का रवैया समझौतापूर्ण व नरम रहा। 20वीं शताब्दी के किसान आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन ने एक दूसरे को प्रभावित किया। अखिल भारतीय किसान सभा ने **'जमींदारी उन्मूलन' जैसी व्यापक समस्या** के समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया।
- **कैथरीन गफ** ने किसान विद्रोहों को पांच भागों में विभाजित किया है-**पुनर्स्थापनात्मक, धार्मिक, सामाजिक लूट, आतंकवादी** प्रतिरोध और सशस्त्र विद्रोह।
- 19वीं शताब्दी के विद्रोह व आंदोलन का नेतृत्व स्थानीय लोगों ने किया। इसके विपरीत 20वीं शताब्दी में नेतृत्व राष्ट्रीय नेताओं के हाथों में चला गया।
- आदिवासी विद्रोह ने जातीय आधार पर अपने आप को संगठित किया तथा ओझाओं जैसे धार्मिक व चमत्कारी नेताओं ने नेतृत्व प्रदान किया।

अन्य नागरिक व गैर आदिवासी विद्रोह

संन्यासी विद्रोह (1763-1800)

- **प्रभावित क्षेत्र:** बंगाल व बिहार
- **नेतृत्व:** मंजर शाह, मूसा शाह भवीनी पाठक, देवी चौधरानी
- **कारण:** कार्यवरित सैनिक, विस्थापित किसान व बेदखल जमींदारों का सरकारी अधिकारियों व धनाढ्य लोगों के प्रति आक्रोश पैदा करना।
- **दिशा व परिणाम:** धनाढ्य लोगों व सरकारी अधिकारियों के घरों व अन्न भंडारों को लूटा गया। बोगरा तथा वे मैमनसिंह में अपनी सरकार बनायी गयी। वारेन हेस्टिंग्स ने एक लम्बे अभियान के बाद इस विद्रोह को दबा दिया।

चुआर (1766-1772, 1795-1816)

- **प्रभावित क्षेत्र:** बंगाल व बिहार के धालभूम, कैलापाल
- **नेतृत्व:** अज्ञात
- **कारण:** अकाल व बढ़टे हुए भूमिकर मुख्य कारण था।
- **दिशा व परिणाम:** राजाओं ने विद्रोह किया तथा आत्म-विनाश की नीति अपनाई। बल तथा समझौतापूर्ण नीति से अंग्रेजों ने इसे दबा दिया।

अध्याय 9

1857 का विद्रोह

भारत में ब्रिटिश राज्य के तेजी से विस्तार के पश्चात् भारतीय शासन प्रणाली में विभिन्न परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने भारतीय जीवन की परम्परागत शैली को बदल दिया। इसका अंतिम परिणाम 1857 का विद्रोह, के रूप में सामने आया, परन्तु यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी।

इससे पूर्व भी छोटे-छोटे विद्रोह होते रहे थे। इनमें से कुछ इस प्रकार थे-**वेल्लोर में 1806 में, बैरकपुर में 1824 में, फिरोजपुर में 1842 में 34वीं रेजिमेंट का विद्रोह,** 1849 में 7वीं बंगाल कैवेलरी, 64वीं रेजिमेंट और 22वीं नेटिव इन्फेंट्री का विद्रोह, 1850 में 66वीं नेटिव इन्फेंट्री का विद्रोह, 1852 में 38वीं नेटिव इन्फेंट्री का विद्रोह आदि। इसी प्रकार 1816 में बरेली उपद्रव, 1831-33 में केरल विद्रोह, 1848 में कांगड़ा, जसवार और दातापुर राजाओं का विद्रोह, 1855-56 में संथालों का विद्रोह आदि। 1857 का विद्रोह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक,धार्मिक और सैनिक कारणों से हुआ था। इन कारणों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है:

1. राजनैतिक कारण: लार्ड वेलेज़ली के अधीन सहायक संधि का मूल उद्देश्य, भारतीय रियासतों पर नियंत्रण स्थापित करना तथा धीरे-धीरे उनके अस्तित्व की समाप्ति पर आधारित था। इसी प्रकार लार्ड डलहौजी का **'व्यपगत का सिद्धांत'** (Doctrine of Lapse) इसी उद्देश्य का विकसित रूप था, जिसके द्वारा दत्तक पुत्र लेने के अधिकार को छीन कर **सतारा**, **जैतपुर**, **सम्भलपुर**, **बघाट**, **उदयपुर**, **झांसी** और **नागपुर** आदि रियासतों को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।

इसके अलावा **अवध को** प्रशासनिक कुप्रबंध के आधार पर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। लार्ड डलहौजी ने मुगल सम्राट की उपाधि को खत्म करने का निश्चय किया तथा बहादुर शाह के सबसे बड़े पुत्र जवाबख्त को युवराज मानने से इंकार कर दिया। इसी प्रकार पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन समाप्त कर दी गयी। ब्रिटिश नीति **'पैक्स ब्रिटानिका'** के फलस्वरूप पिण्डारी, ठग तथा अन्य सैनिकों को भारतीय रियासतों की सेना से हटा लिया गया, जिससे इन्होंने विद्रोहियों का साथ दिया।

2. प्रशासनिक एवं आर्थिक कारण: अंग्रेजों ने भारत के प्रशासनिक एवं आर्थिक ढांचे में मूलभूत परिवर्तन किये, जिससे भारतीयों में असंतोष उत्पन्न हुआ। भारतीय **कृषि एवं उद्योग का ह्रास** हुआ। **किसान**, **दस्तकार**, **दुकानदार** आदि सभी प्रभावित हुए। भारतीय अभिजात वर्ग को शक्ति व पदवी से वंचित कर दिये जाने के फलस्वरूप, इन वर्गों के पोषक तत्त्व को अभाव का सामना करना पड़ा। अंग्रेजों की भूमि कर व्यवस्था ने एक तरफ नये करों के बोझ से कृषकों की स्थिति दयनीय कर दी, वहीं इनाम कमीशन जैसी समितियों के गठन से अनेक जागीरदारों को उनके जागीरों से बेदखल कर दिया गया।

3. सामाजिक एवं धार्मिक कारण: जातिभेद की भावना से प्रेरित अंग्रेज, भारतीयों को हेय दृष्टि से देखते थे। वे भारतीयों को 'सूअर' तथा 'काले' की संज्ञा देते थे और उन्हें बर्बर तथा बेइमान समझते थे। उनका विश्वास था कि **भारतीयों को ईसाई बना कर** उन्हें सभ्य बनाया जा सकता है। भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए पदोन्नति जैसा प्रलोभन दिया जाता था। इस धर्म परिवर्तन का जोरदार विरोध किया गया।

अंग्रेजों ने **1856 में धार्मिक अयोग्यता** अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार धार्मिक परिवर्तन से पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता था। इसका मुख्य उद्देश्य ईसाई बनने वालों को लाभ पहुंचाना था। भारतीयों ने इसका विरोध किया। इसके अलावा सती एवं शिशु हत्या जैसी प्रथाओं का हटाया जाना, **1856 का विधवा पुनर्विवाह कानून**, **रेलवे एवं तार का विस्तार**, पश्चिमी शिक्षा का प्रसार आदि से भारतीय रूढ़िवादी समाज चिंतित हो उठा। वह कभी भी अपने रीति रिवाजों में हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

4. सैनिक कारण: 1857 के विद्रोह का सूत्रपात सैनिकों ने किया था। सैनिकों में ब्रिटिश नीति के खिलाफ व्यापक रोष व्याप्त था। बंगाल की सेना में यह रोष काफी ज्यादा था। इस सेना के अधिकांश सिपाही **अवध तथा उत्तर पश्चिमी प्रांतों** के उच्च जाति वर्ग से सम्बन्धित थे। इसी कारण वे अनुशासन को **स्वीकार करने को तैयार** नहीं थे।

1824 में बैरकपुर के सैनिकों ने समुद्रपार बर्मा में सेवा करने से मनाही कर दी थी। इसी प्रकार 1844 में चार बंगाल रेजिमेंटों ने अतिरिक्त भत्ता नहीं मिलने पर सिन्ध में जाने से इंकार कर दिया। इस स्थिति से निपटने के लिए **1856 में लार्ड कैनिंग** की सरकार ने सेना-भर्ती अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार सभी सैनिकों को यह स्वीकार करना होता था कि सरकार को जहां भी आवश्यकता होगी, वे वहीं कार्य करेंगे।

यह अधिनियम बहुत ही अप्रिय सिद्ध हुआ, खास कर यह देखते हुए कि **1839-42 तक** अफगानिस्तान में सेवा कर रहे सैनिकों को भारतीय समाज ने **'जात बाहर'** घोषित कर दिया था। इसी प्रकार 1854 में **डाकघर अधिनियम के** पारित होने से सैनिकों की नि:शुल्क डाक सुविधा समाप्त कर दी गयी। 1856 में भारतीय सेना में 2,38,000 भारतीय सैनिक तथा 45,322 यूरोपीय सैनिक थे। इस अनुपात ने भारतीय सैनिकों को जहां प्रेरित किया वहीं अंग्रेजों के मन में संदेह को जन्म दिया।

अध्याय 10

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम : प्रथम चरण

अंग्रेजी राज्य का प्रभाव

भारत के विशाल साम्राज्य को अधिपत्य कर लेने के बाद इस पर नियंत्रण रखने और शासन चलाने के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी और बाद में अंग्रेजी सरकार को कई तरह के हथकंडे इस्तेमाल करने पड़े। 200 वर्षों की इस लम्बी अवधि के दौरान अंग्रेजों की नीति अक्सर बदलती रही। फिर भी अंग्रेजों ने अपना मुख्य लक्ष्य कभी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। ये लक्ष्य थे-कम्पनी तथा अंग्रेजों की मुनाफे में बढ़ोतरी, भारत पर अधिकार को ब्रिटेन के लिए फायदेमंद बनाना तथा भारत पर ब्रिटिश पकड़ को कायम रखना और उसे सुदृढ़ करना।

इसके अतिरिक्त उनके जितने भी उद्देश्य थे वे इन उद्देश्यों की मदद के लिए थे। यद्यपि अंग्रेजों ने इन उद्देश्यों को कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि उन्होंने **'पितृवाद'** (Paternalism) और **'गोरे लोगों का बोझ'** (White men's burden) का सिद्धान्त पेश किया। यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो स्पष्ट होता है कि **'भारत का शोषण'** और 'चाहे अनचाहे कुछ लाभप्रद प्रभाव' दोनों ही सत्य हैं।

भारतीय जीवन पर ब्रिटिश राज्य के प्रभाव के विषय में वाद-विवाद 19वीं सदी के उत्तरार्ध में आरंभ हुआ। **दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, डी.ई. वाचा तथा सुरेन्द्र नाथ बनर्जी** जैसे राष्ट्रवादी लेखकों ने भारत में अंग्रेजी राज्य का मूल्यांकन किया और वे इस निश्चय पर पहुंचे कि अंग्रेज हर तरह से भारत का शोषण कर रहे हैं और भारतीय धन की निकासी कर रहे हैं। इस राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का विरोध करने के लिए **जे.एल.स्टीफन, जॉन स्टैची तथा डब्ल्यू.डब्ल्यू हंटर** जैसे अंग्रेज इतिहासकारों ने **पितृवाद (Paternalism)** तथा **न्यासवाद (Trusteeship)** के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और कहा कि अंग्रेज तो केवल भारत को **'सभ्य बनाने'** का उद्देश्य ही निभा रहे हैं। स्पष्ट है कि उन्होंने भारतीय जीवन पर अंग्रेजी नीतियों के प्रभाव की अनदेखी की थी।

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ ऐसे अंग्रेज इतिहासकार भी हुए, जिन्होंने अंग्रेजों की भारत को लूटने तथा रचनात्मक भूमिका के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उनकी मान्यता है कि अंग्रेजों के राज्य की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में राजनीतिक जीवन का उत्थान हुआ और इसी में उस राज्य की सफलता है।

अंग्रेजों की भारत विजय पहले की सभी विजयों से भिन्न अधिक गंभीर थी। पूर्व विजेता अरब, तुर्क तथा मुगल, जिन्होंने भारत को रौंद डाला, अधिक उत्तम भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुए लेकिन जब अंग्रेजों ने भारत को विजित किया तो उनका भारतीय संस्कृति से प्रभावित होना कठिन था, क्योंकि वे यूरोप के सबसे समृद्ध देश थे। पहले के विजेताओं, जिन्होंने भारत को ही अपना घर बना लिया, से भिन्न अंग्रेजों ने भारतीय आर्थिक साधनों का अपने देश अर्थात् इंग्लैंड को समृद्ध बनाने के लिए प्रयोग किया।

भारत पर प्राचीन आक्रमणों की अंग्रेजी आक्रमण से तुलना करते हुए **कार्ल मार्क्स** ने लिखा था-"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अंग्रेजों द्वारा भारत पर किया गया अत्याचार इन सभी अत्याचारों से कहीं अधिक कड़ा तथा भिन्न है, जो कि भारत को आज तक सहना पड़ा है। इंग्लैंड ने तो भारतीय समाज का सम्पूर्ण ढांचा ही भंग कर दिया है।" पहले के आक्रान्ताओं ने भारतीय सामाजिक-आर्थिक आधार को नहीं बदला था और उनमें से अधिकांश भारतीय जीवन का अंग बन गये थे। **अंग्रेजी विजय ने तो भारतीय सामाजिक तथा आर्थिक आधार ही तोड़ दिया। ये लोग सदैव विदेशी रहे।**

भारतीय जीवन में जो भी राजनैतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक परिवर्तन पिछले दो सौ वर्षों में देखने को मिले, वे अंग्रेजों ने परोपकार की भावना से प्रेरित होकर नहीं किये, बल्कि वे तो साम्राज्यवादी शासकों के भारत पर और भी अधिक दृढ़ जकड़ स्थापित करने हेतु किये गये प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप हुआ। दूसरे शब्दों में भारत में राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन अंग्रेजों की अनिच्छा से आये अथवा आकस्मिक आये।

1. आर्थिक प्रभाव (Economic impact)

भारत में अंग्रेजी राज्य का आर्थिक प्रभाव काफी हानिप्रद एवं घिनौना है। जब अंग्रेज भारत से लौटे तो भारत आर्थिक रूप से अविकसित देश का चित्र प्रस्तुत करता था जिसमें भुखमरी, निर्धनता तथा बहुत कम राष्ट्रीय आय थी।

अंग्रेजी राज के कारण 19वीं शताब्दी के अंत तक भारत एक विशेषवर्गीय उपनिवेश बन गया था। भारतीय अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन अंग्रेजी अर्थव्यवस्था तथा समाज के अधीन हो गया। 1760 के पश्चात् ही जब इंग्लैंड का विकास संसार के सबसे प्रमुख पूंजीपति देश के रूप में हो रहा था, तब भारत संसार का सबसे पिछड़ा हुआ उपनिवेशीय देश बनने की ओर अग्रसर हो रहा था।

कृषि: ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन भारतीय कृषि की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया गया, क्योंकि कम्पनी की आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर ही था। कम्पनी ने अधिकाधिक कर प्राप्त करने की इच्छा से भिन्न-भिन्न प्रयोग किये। उन्होंने **'खुली नीलामी'** की पद्धति (वारेन हेस्टिंग्स के समय) अपनायी, जिसमें अधिकाधिक कर देने वालों को भूमि दे दी जाती थी। यह पद्धति असफल रही।

अध्याय 11

भारत में प्रतिनिधि सरकार

1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम (The Indian Council Act-1861)

1858 के अधिनियम द्वारा केवल **गृह सरकार** में ही परिवर्तन हुए थे। **भारतीय प्रशासन** में कोई भी **परिवर्तन नहीं किये** गये थे। इस बात की बहुत तीव्र भावना थी कि 1857-58 के महान संकट के पश्चात भारतीय संविधान में महान परिवर्तनों की आश्यकता है।

वर्ष **1861** के पश्चात अधिनियम के साथ **'सहयोग की नीति'** का आरंभ हुआ। भारतीयों को प्रशासन में भाग लेने का अधिकार दिया जाने लगा।

वर्ष 1861 के अधिनियम के पारित होने के प्रमुख कारण निम्न थे:

ब्रिटिश नीति में परिवर्तन: 1857 के विद्रोह का महत्वपूर्ण प्रभाव ब्रिटिश सरकार के रुख पर पड़ा। इंग्लैंड के बहुत से लोगों को यह विश्वास हो गया कि सन 1857 की क्रान्ति का कारण शासक और शासित के बीच घनिष्ठ संबंध का अभाव तथा देश की व्यवस्थापिका सभाओं में भारतीयों की अनुपस्थिति थी।

भारतीय लोग सरकार के विषय में क्या सोचते हैं, इनकी जानकारी तभी हो सकती है जब प्रमुख भारतीयों को कौंसिलों तथा सरकार में हाथ बंटाने का मौका दिया जाए। दूसरी ओर सैयद अहमद खाँ जैसे वफादार भारतीयों ने भी इस बात पर जोर दिया कि भारतीयों को विधायिका परिषद में स्थान दिया जाना चाहिए।

परिषद में दोष: 1853 के चार्टर ऐक्ट से कानून बनाने की व्यवस्था का केन्द्रीयकरण कर दिया गया था। केवल केन्द्रीय विधान परिषद को ही संपूर्ण देश के लिए कानून बनाने का अधिकार था। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियां थीं, जिसका ज्ञान एक संस्था को होना संभव नहीं था।

इसके अलावा विधान परिषद अपने कार्यकरण में संसदीय प्रक्रियाओं का अनुकरण करने लगी। उसकी शक्ति काफी बढ़ गयी। यहां तक कि वह सरकार के गुप्त मामलों में प्रश्न पूछती थी, जिससे केन्द्रीय सरकार के कार्यों में कठिनाई होती थी। अत: इसकी शक्ति और अधिकार को नियंत्रित करना आवश्यक समझा जाने लगा।

गवर्नर जनरल का अनावश्यक अधिकार: गवर्नर जनरल को यह अधिकार था कि वह अधिनियमित प्रान्तों (Non Regulation Provinces) के लिए कार्यकारी आदेश जारी कर सकता था। उन आदेशों का वही महत्व होता था, जो एक कानून का। इस संवैधानिक त्रुटि को दूर करना आवश्यक था।

भारतीयों की इच्छापूर्ति: भारतीय जनता भी शासन में सुधार करने की मांग कर रही थी। वह शासन में भाग लेना चाहती थी। अत: लोकप्रिय आकांक्षा की पूर्ति के लिए संसदीय अधिनियम को पारित किया जाना आवश्यक समझा जाने लगा।

अधिनियम के उपबंध

1861 के भारतीय परिषद अधिनियम में भूतपूर्व अधिनियमों को एक जगह संचित किया तथा उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन लाया गया, जो **विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था**। भारतीयों को कानून निर्माण से संबंधित कर इसने प्रतिनिधि मूलक संस्थाओं की नींव डाली।

I. वायसराय की कार्यकारी परिषद में एक पांचवां सदस्य सम्मिलित कर दिया गया, जो एक **विधि वृत्ति** (Iegal profession) का व्यक्ति था, एक विधिवेत्ता न कि एक वकील।

II. वायसराय की परिषद में अधिक सुविधा से कार्य करने के लिए नियम बनाने की अनुमति दे दी गई। इस नियम द्वारा **लार्ड कैनिंग** ने **विभागीय प्रणाली** की शुरुआत की। इस प्रकार भारत सरकार की मंत्रिमंडलीय व्यवस्था की नींव रखी गई। इस व्यवस्था के अनुसार प्रशासन का प्रत्येक विभाग एक व्यक्ति के अधीन होता था। वह उस विभाग का प्रतिनिधि, प्रशासन के लिए उत्तरदायी और उसका संरक्षक होता था। अत: अब समस्त परिषद के सम्मुख केवल नीति संबंधी मामले ही आते थे। निश्चय ही यह प्रणाली अधिक सफल थी।

III. कानून बनाने के लिए वायसराय की कार्यकारी परिषद में न्यूनतम **6 और अधिकतम 12 अतिरिक्त सदस्यों को नियुक्त कर कार्यकारी परिषद का विस्तार किया गया**। इन सदस्यों को वायसराय द्वारा नियुक्त होना था तथा वे दो वर्षों तक अपने पद पर बने रह सकते थे। इनमें से न्यूनतम आधे सदस्य गैर-सरकारी होंगे। यद्यपि भारतीयों के लिए कोई वैधानिक प्रावधान नहीं था, परन्तु व्यवहार में कुछ गैर-सरकारी सदस्य 'ऊंची श्रेणी के भारतीय' थे। इस विधान परिषद का कार्य केवल कानून बनाना था।

IV. इस अधिनियम के अनुसार **बम्बई तथा मद्रास प्रांतों** को अपने लिए **कानून बनाने तथा** उसमें संशोधन करने का अधिकार पुन: दे दिया गया। इन कानूनों को गवर्नर जनरल की अनुमति आवश्यक थी। ऐसी विधान परिषदें बंगाल, उत्तर-पश्चिमी प्रांत तथा **पंजाब में 1862, 1886** तथा **1897** में क्रमश: इस ऐक्ट के अनुसार स्थापित की गयी।

V. गर्वनर जनरल को संकटकालीन अवस्था में विधान परिषद की अनुमति के बिना ही **अध्यादेश जारी करने** की **शक्ति प्रदान की गयी**। ये अध्यादेश अधिकाधिक 6 मास तक लागू रह सकते थे।

अध्याय 12

प्रथम विश्व युद्ध से गोलमेज सम्मेलन तक

प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी युद्ध में शामिल कर लिया। ब्रिटेन ने बिना भारतीयों की अनुमति के भारतीय जनशक्ति तथा संसाधनों का युद्ध में व्यापक इस्तेमाल किया। इससे भारत पर राष्ट्रीय ऋण में 30% की बढ़ोतरी हो गयी, जिससे भारतीय जनता के कष्टों में अपार वृद्धि हुई। इन सबका भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा।

प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटेन के युद्ध प्रस्तावों का स्वागत किया और उसे व्यापक समर्थन दिया। ऐसा इस उद्देश्य से किया गया कि ब्रिटिश सरकार इस वफादारी के पुरस्कार स्वरूप उनके राजनीतिक सुधार की मांग को पूरा करेगी। ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की कि ब्रिटेन का लक्ष्य भारत में धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना है। लेकिन युद्ध के बाद घोषित सुधारों से नेताओं और जनता को व्यापक निराशा हुई। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन में व्यापक प्रगति हुई।

1. होमरूल आन्दोलन का उदय

'होमरूल' **आयरलैंड** का शब्द है। सर्वप्रथम आयरिश नेता **'रेडमाण्ड'** के नेतृत्व में 'होमरूल लीग' की स्थापना हुई थी। प्रथम विश्व युद्ध ने होमरूल आन्दोलन के जन्म और विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय नेताओं के सामने यह स्पष्ट होता जा रहा था कि सरकार तब तक कोई वास्तविक अधिकार नहीं देगी, जब तक कि एक वास्तविक राजनीतिक आन्दोलन के जरिए उसके ऊपर जनता का दबाव न डाला जाये। युद्ध ने, जिसमें साम्राज्यवादी शक्तियां आपस में लड़ रही थीं, उनकी जातीय श्रेष्ठता की धारणा को समाप्त कर दिया, जिससे भारतीयों का नैतिक मनोबल बढ़ा। इसके अलावा युद्ध के कारण करों की दर बढ़ गयी एवं मूल्यों में काफी वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप समाज के कमजोर तबके की परेशानियां बढ़ गयी थीं।

इन्हीं परिस्थितियों में **1915-16 में दो होमरूल लीग** की स्थापना हुई। एक के **नेता तिलक** थे और दूसरे की नेता थीं **श्रीमती एनी बेसेंट**। दोनों ने आपसी सहयोग से पूरे देश में इस मांग को प्रचारित किया कि **युद्ध के बाद भारत को स्वशासन** दिया जाये। इन दोनों लीगों ने तेजी से प्रगति की और होमरूल की मांग पूरे देश में गूंजने लगी। कांग्रेस की निष्क्रियता से दुखी अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादी भी होमरूल आन्दोलन में शामिल हो गये। सरकार ने व्यापक दमन चक्र का सहारा लिया और धीरे-धीरे यह आन्दोलन बिखर गया।

तिलक का होमरूल लीग

- स्थापना: 28 अप्रैल, 1916 ई.
- स्थान: पूना
- सस्थापक: जोसेफ बैफटिटा
- सचिव: केलकर

तिलक ने अप्रैल **1916 में मुम्बई के बेलगांव** में अपने होमरूल लीग का गठन किया। इसका गठन **बम्बई प्रांतीय सभा** में किया गया। इसकी गतिविधियां **मध्य प्रांत, महाराष्ट्र (बम्बई को छोड़कर), कर्नाटक** और बरार तक सीमित थीं।

तिलक द्वारा स्थापित होमरूल लीग के सदस्यों में **जीएस खापेर्डे बीएस मुंडे** एवं **आर.पी. करडीकर** थे। तिलक ने अपने मराठा और केसरी के माध्यम से अपने होमरूल की अवधारणा को स्पष्ट किया है। तिलक के अनुसार स्वराज से उनका तात्पर्य ब्रिटिश नौकरशाही की जगह ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी शासन था।

तिलक के लीग में निम्नलिखित योजनाएं थीं-

1. स्वराज्य की मांग
2. भाषायी राज्य
3. शिक्षा में देशी भाषा का प्रयोग
4. जातिवाद के विरुद्ध धर्मयुद्ध

तिलक का नारा था **"स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।"**

ऐनी बेसेंट की आल इंडिया होमरूल लीग

- स्थापना: सितंबर 1916 ई.
- स्थान: मद्रास
- सस्थापक: ऐनी बेसेन्ट
- सचिव: जॉर्ज अरूण्डेल

श्रीमती एनी बेसेंट ने **सितम्बर 1916 में मद्रास के गोखले सभागार** में अपना होमरूल लीग प्रारंभ किया। **जॉर्ज अरुंडेल** इसके संगठन मंत्री बनाये गये। इनके होमरूल आंदोलन में **सुब्रमण्यम अय्यर** का प्रमुख योगदान था तथा **मोती लाल नेहरू** एवं **तेज बहादुर** सप्रु इसके प्रमुख सदस्य थे। इसकी गतिविधियों में मुख्य बल स्वराज्य के लिए आन्दोलन शुरू करने पर दिया गया। इन्होंने अपने होमरूल लीग का प्रचार, **न्यू इंडिया एवं कामनवील** के माध्यम से किया। इसके सर्वाधिक कार्यालय मद्रास में थे। एनी बेसेंट का लीग तिलक के लीग के प्रभाव वाले क्षेत्र को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में सक्रिय था। यद्यपि दोनों लीगों का विलय नहीं हुआ था, परन्तु इन्होंने आपसी सहयोग के द्वारा कार्य किया। होमरूल आन्दोलन सरकारी दमन का शिकार हुआ। तिलक गिरफ्तार कर लिए गये, परन्तु कुछ समय बाद इन्हें छोड़ दिया गया। उधर मद्रास सरकार ने **एनी बेसेंट** तथा उनके सहयोगियो **बी. पी. वाडिया** और **अरुंडेल** को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन बढ़ती हुई राष्ट्रवादी भावना को देखकर सरकार ने समझौतावादी रूख अपनाया।

अध्याय 13

राष्ट्रीय आंदोलन में अन्य विचारधाराएं

क्रांतिकारी आन्दोलन

20वीं शताब्दी के पूर्वाह्न में भारत में उग्रवाद के साथ-साथ उग्र क्रांतिवाद का भी विकास हुआ। क्रांतिकारी आन्दोलन के उत्थान के मुख्यत: वही कारण थे, जिनसे राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद का उदय हुआ। उग्र राष्ट्रवादियों का ही एक दल क्रांतिकारी के रूप में उभरा। उग्र क्रान्तिकारी अधिक शीघ्र परिणाम चाहते थे।

भारत के भिन्न-भिन्न भागों में क्रांतिकारियों के राजनैतिक दर्शन को निश्चित रूप से वर्णन करना संभव नहीं है, परन्तु उन सबका एक ही उद्देश्य मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना था। साधनों के विषय में उनका विश्वास था कि पाश्चात्य साम्राज्यवाद को केवल पश्चिमी हिंसक साधनों से ही समाप्त किया जा सकता है। इसलिए इन लोगों ने बन्दूक तथा पिस्तौल का प्रयोग किया। उन्होंने आयरलैंड से प्रेरणा प्राप्त की।

क्रांतिकारियों का यह आन्दोलन दो चरणों में हुआ- (i) प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व और (ii) प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात।

क्रांतिकारियों ने अपने गुप्त संगठन बनाये, हथियार एकत्र किये, सरकारी खजानों को लूटा तथा बदनाम अंग्रेज अफसरों और देशद्रोहियों की हत्याएं की। इनकी गतिविधियां सबसे अधिक तेज महाराष्ट्र, बंगाल और पंजाब में थी। देश के अन्य भागों एवं विदेशों में भी क्रांतिकारी संगठन बनाये गये थे।

क्रान्तिकारियों की कार्य-प्रणाली: क्रन्तिकारियों का मानना था कि 'अंग्रेजी शासन पाशविक बल पर स्थित है और यदि हम अपने आपको स्वतंत्र करने के लिए पाशविक बल का प्रयोग करते हैं तो यह उचित ही है। उनका संदेश था: **'तलवार हाथ में लो और सरकार को मिटा दो।'** उनकी कार्य-प्रणाली के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें शामिल थीं:

(i) पत्रों की सहायता से प्रचार द्वारा शिक्षित लोगों के मस्तिष्क में दासता के प्रति घृणा उत्पन्न करना।
(ii) संगीत, नाटक एवं साहित्य के द्वारा बेकारी और भूख से त्रस्त लोगों को निडर बनाकर उनमें मातृभूमि और स्वतंत्रता का प्रेम भरना।
(iii) बम बनाना, बंदूक आदि चोरी से उपलब्ध करना तथा विदेशों से शस्त्र प्राप्त करना।
(iv) चन्दा, दान तथा क्रांतिकारी डकैतियों द्वारा व्यय के लिए धन का प्रबंध करना।

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी अभियान

क्रांतिकारी आंदोलन की लहर सबसे पहले महाराष्ट्र से चली और शीघ्र ही इसने सम्पूर्ण भारत में फैल गया। महाराष्ट्र में प्रथम क्रांतिकारी संगठन 1896-97 में पूना में चापेकर बंधुओं (**दामोदर हरि चापेकर और बालकृष्ण हरि चापेकर**) द्वारा स्थापित किया गया। इसका नाम **'व्यायाम मंडल'** था। इस गुट के द्वारा **रैण्ड और एम्हर्स्ट** नामक दो अंग्रेज अधिकारियों की हत्या की गयी। यह यूरोपियों की प्रथम राजनीतिक हत्या थी। इस हत्या का निशाना तो पूना में प्लेग समिति के प्रधान श्री रैण्ड थे, परन्तु एम्हर्स्ट भी अकस्मात् मारे गये। चापेकर बन्धु पकड़े गये तथा फांसी पर लटका दिये गये।

सावरकर ने 1904 में नासिक में **'मित्रमेला'** नाम से एक संस्था आरंभ की थी, जो शीघ्र ही मेजनी के **'तरुण इटली'** की तर्ज पर एक गुप्त सभा **'अभिनव भारत'** में परिवर्तित हो गयी। बंगाल के क्रांतिकारियों से भी इस संस्था का संबंध था। इस संस्था ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए विदेशों से अस्त्र-शस्त्र मंगवाया और बम बनाने का काम रूसियों के सहायता से किया।

दामोदर सावरकर सहित अनेक व्यक्तियों पर **जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन** की हत्या के आरोप में **'नासिक षड्यंत्र'** केस चलाया गया तथा उन्हें भारत से आजीवन निर्वासित कर 'कालापानी' की सजा दी गयी। बाद में सरकार की दमनात्मक नीति एवं धन की कमी के कारण महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आन्दोलन समाप्त हो गए या उनकी गतिविधियों में कमी आई।

1918 ई. की विद्रोह समिति की रिपोर्ट में यह कहा गया था कि भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन का प्रथम आभास महाराष्ट्र में मिलता है, विशेषकर पूना जिले के चितपावन ब्राह्मणों में। ये ब्राह्मण महाराष्ट्र के शासक पेशवाओं के वंशज थे। उल्लेखनीय है कि चापेकर बन्धु तथा तिलक चितपावन ब्राह्मण ही थे।

बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन (अनुशीलन समिति 1907 ई.)

बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन का सूत्रपात **भद्रलोक समाज** से हुआ। **पी. मित्रा** ने एक गुप्त क्रांतिकारी सभा **'अनुशीलन समिति'** का गठन किया। बंग-विभाजन की योजना के विरुद्ध जन आक्रोश की भावना एवं सरकारी दमनात्मक कार्रवाइयों ने क्रांतिकारी कार्यवाइयों का प्रसार किया।

1905 ई. में **बारीन्द्र कुमार घोष** ने **'भवानी मंदिर'** नामक की पुस्तिका प्रकाशित कर क्रांतिकारी आन्दोलन को बढ़ावा दिया। इसके पश्चात् 'वर्तमान रणनीति' नामक पुस्तिका प्रकाशित की। **'युगान्तर' और 'सांध्य'** नामक पत्रिकाओं द्वारा भी अंग्रेज विरोधी विचार फैलाये गये। इसी प्रकार एक अन्य पुस्तिका **'मुक्ति कौन पथे'** में भारतीय सैनिकों से क्रांतिकारियों को हथियार देने को आग्रह किया गया।

अध्याय 14

द्वितीय विश्व युद्ध से स्वतंत्रता प्राप्ति तक

द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम पर भी व्यापक रूप से पड़ा। इसने स्वतंत्रता आन्दोलन की गति तीव्र कर दी। कांग्रेस को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। मुस्लिम लीग की नीति में भी परिवर्तन आया। सरकार को भी बाध्य होकर विश्व युद्ध और उसके पश्चात् भारत के लिए संवैधानिक सुधारों और स्वतंत्रता प्रदान करने के वायदे करने पड़े। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध का भारतीय राजनीति पर अमिट प्रभाव पड़ा।

सितम्बर 1939 को अंग्रेजी सरकार ने भारतीय विधानमंडल से भी परामर्श किये बिना, भारत की ओर से द्वितीय विश्व युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश संसद ने भारत सरकार संशोधन कानून द्वारा वायसराय को असीमित अधिकार प्रदान कर दिये, जिससे **वायसराय 1935 ई.** के अधिनियम के स्थान पर भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत सिर्फ अध्यादेशों द्वारा ही शासन कर सकता था, जिसका कांग्रेस द्वारा विरोध किया गया। उसने सरकार से अनुरोध किया कि वह पहले युद्ध संबंधी लक्ष्यों को स्पष्ट करे, तभी कांग्रेस उसे अपना समर्थन देगी।

17 अक्तूबर, 1939 को वायसराय लिनलिथगो ने यह स्पष्ट किया कि भारत में **'डोमिनियन स्टेटस'** की स्थापना करना ही सरकार का उद्देश्य है। ब्रिटेन स्वयं तो स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के नाम पर युद्ध कर रहा था, परंतु भारतीयों को इससे वंचित रखना चाहता था। कांग्रेस भारत में पूर्ण जनतंत्र और अपने लिए स्वयं संविधान बनाने का अधिकार चाहती थी, जिसे अंग्रेज देना नहीं चाहते थे। इसलिए **22 अक्तूबर, 1939 में कांग्रेस कार्यकारिणी** ने सभी प्रांतीय कांग्रेसी सरकारों को त्यागपत्र **देने का आदेश दिया**। अतएव सात कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिये और उन प्रांतों का शासन 1935 के अधिनियम की धारा 93 के अधीन गवर्नरों को सौंप दिया गया।

जिन्ना ने **22 दिसम्बर, 1939 को 'मुक्ति दिवस'** के रूप में मनाय, क्योंकि देश को कांग्रेस से छुटकारा मिल गया था। केवल सिन्ध, पंजाब और बंगाल में लोकप्रिय मंत्रिमंडल कार्य करते रहे। लीग इतने से ही संतुष्ट नहीं हुई। उसने जगह-जगह सरकारों में प्रवेश करने की कोशिश की। असम, पश्चिमोत्तर प्रदेश और सिन्ध में लीग के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के सहयोग से सरकारें बनीं। यद्यपि कांग्रेस ने युद्ध में ब्रिटेन के साथ असहयोग की नीति अपनायी थी, परंतु कांग्रेस का दक्षिणपंथी वर्ग रियायतें प्राप्त कर सरकार से सहयोग करने के पक्ष में था।

कांग्रेस ने **जुलाई 1940 में** सरकार के समक्ष यह मांग रखी कि अगर अंग्रेजी सरकार केन्द्र में भारतीयों को लेकर एक ऐसी सरकार बना बनाए, जो विधानसभा के प्रति उत्तरदायी हो और सरकार युद्ध के पश्चात् भारत को स्वाधीनता प्रदान करे, तो कांग्रेस युद्ध में सरकार को सहयोग दे सकती है। अंग्रेजी सरकार इन शर्तों को मानने को तैयार नहीं थी। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने यह स्पष्टतया घोषणा की कि **'अटलांटिक चार्टर'** भारत पर लागू नहीं होगा।

अगस्त प्रस्ताव (The August offer 8 August, 1940)

इस समय तक युद्ध में जर्मनी की तेजी से विजय हो रही थी। **डेनमार्क, नार्वे, हालैंड, फ्रांस** आदि उसके अधिकार में आ गये थे। फ्रांस में अंग्रेजी सेना को मुंह की खानी पड़ी थी और स्वयं ब्रिटेन पर खतरे के बादल मँडरा रहे थे। युद्ध के कारण ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई थी। ऐसी स्थिति में सरकार को भारत के समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता थी। अत: **चर्चिल** से अनुमति लेकर भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए वायसराय लिनलिथगो ने **8 अगस्त, 1940 को अपना 'अगस्त प्रस्ताव'** प्रस्तुत किया, जिसमें निम्न बातें थीं-

1. ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में **औपनिवेशिक स्वराज्य** की स्थापना करना है।
2. युद्ध संबंधी विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिए **'युद्ध परामर्शदात्री परिषद'** (War Advisory Council) बनायी जायेगी, जिसमें भारतीयों को भी शामिल किया जायेगा।
3. युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सभी वर्गों एवं राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाकर संवैधानिक विकास की समस्या पर विचार किया जायेगा। अर्थात अंग्रेजी सरकार इस बात से सहमत है कि नया संविधान बनाना मुख्यत: भारतीयों का अपना उत्तरदायित्व है।
4. अल्पसंख्यकों की स्वीकृति के अभाव में सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को लागू नहीं करेगी।
5. वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार और अधिक भारतीयों को स्थान।

यह घोषणा एक महत्वपूर्ण प्रगति थी, क्योंकि इसमें स्पष्ट कहा गया था कि भारत का संविधान बनाना भारतीयों का अपना अधिकार है और इसमें स्पष्ट **'प्रादेशिक स्वशासन'** (Dominion Status) की प्रतिज्ञा की गयी थी। परन्तु कांग्रेस ने **यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।** वह स्वतंत्रता और अपनी सरकार की मांग कर रही थी, जो उसे नहीं मिली।

इस प्रस्ताव में अल्पसंख्यकों को जरूरत से ज्यादा महत्व प्रदान किया। इससे कालांतर में सांप्रदायिकता और देश के विभाजन को बल मिला। इसी कारण जहाँ कांग्रेस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, वहीं मुस्लिम लीग इस प्रस्ताव से संतुष्ट थी। उसके हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था, जिसके सहारे वह आसानी से पाकिस्तान प्राप्त कर सकती थी।

अध्याय 15

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में अलगाववादी प्रवृत्तियां

सांप्रदायिकता का उदय और विकास

19वीं सदी के अंत तक राष्ट्रवाद के उदय के साथ-साथ संप्रदायवाद ने भी सर उठाया और इसके कारण भारतीय जनता और राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा पैदा हुआ। इसका सबसे दु:खद परिणाम देश के विभाजन के रूप में सामने आया।

भारत में सांप्रदायिकता की समस्या को केवल हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न अथवा हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का विरोध मानना ठीक नहीं। सांप्रदायिक प्रश्न का आधार राजनैतिक अधिक और धार्मिक कम था। इन दो धर्मों के अतिरिक्त इस त्रिभुज में एक तीसरा पक्ष भी था। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुस्लिम संप्रदायों के बीच अपने आपको स्थापित कर एक सांप्रदायिक त्रिभुज खड़ा कर दिया। इस त्रिभुज को सबसे दृढ़ तथा आधार भुजा अंग्रेज थे। वे न तो मुसलमानों के मित्र थे न ही हिन्दुओं के शत्रु। वे तो बस ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पोषक थे तथा 'बांटो और राज करो' की रोमन कहावत में विश्वास करते थे। संप्रदायवाद अतीत की एक विरासत है। यह सच है कि सांप्रदायिकता प्राचीन या मध्ययुगीन विचारधारा का इस्तेमाल करती है तथा उस पर आधारित भी होती है, लेकिन मूलत: यह एक आधुनिक विचारधारा और राजनैतिक प्रवृत्ति थी। 1870 के दशक के पहले तक शायद ही किसी सांप्रदायिक विचारधारा और सांप्रदायिक राजनीति का अस्तित्व रहा है।

संप्रदायवाद एक **आधुनिक प्रवृत्ति** है, जिसकी **जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित है।** संप्रदायवाद का उदय जनता और उसकी भागीदारी पर आधारित एक नयी आधुनिक राजनीति का परिणाम थी। ऐसा भी नहीं है कि सांप्रदायिकता जैसी चीज का विकास सिर्फ भारत में हुआ हो। यह भारत के विशेष ऐतिहासिक या सामाजिक विकास का अनिवार्य या अपरिहार्य नतीजा भी नहीं थी। यह उन परिस्थितियों की उपज थी, जिसके कारण **दूसरे समाजों** में सांप्रदायिकता जैसी घटनाओं और विचाराधाओं को जन्म दिया, जैसे फासीवाद, नस्लवाद, उत्तरी आयरलैंड का कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट संघर्ष या लेबनान का ईसाई-मुस्लिम संघर्ष।

भारत में सांप्रदायिक चेतना का जन्म उपनिवेशवाद के दबाव तथा उसके खिलाफ संघर्ष करने की जरूरत से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ। देश का आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण, भारत की एक आधुनिक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया, उपनिवेशवाद आदि ने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की, जिनके कारण संप्रदायवाद का उदय हुआ। यह समझना गलत है कि यह सिर्फ सत्ता लोलुप राजनीतिज्ञों या धूर्त प्रशासकों के षड्यंत्र का नतीजा था। इसकी जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित थीं।

भारत में संप्रदायवाद के उदय के निम्न कारण थे:

आर्थिक कारण: भारत में उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था के कारण उत्पन्न पिछड़ेपन ने सांप्रदायिकता के विकास में काफी सहयोग किया। औपनिवेशिक शोषण से अर्थव्यवस्था में ठहराव आया तथा भारतीय जनता खासकर मध्यम वर्ग को इसने काफी प्रभावित किया। उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओं का विस्तार नहीं होने के कारण बेकारी इनके लिए समस्या बन गयी।

1928 ई. के आर्थिक मंदी के दौरान आर्थिक अवसर और भी कम हो गये। जो कुछ भी आर्थिक अवसर उपलब्ध थे, उनका अधिकतम हिस्सा हासिल करने के लिए मध्यम वर्ग के लोग शैक्षणिक योग्यताओं और व्यक्तिगत गुणों के साथ-साथ भाई-भतीजावाद, घूस आदि का भी इस्तेमाल करते थे। अपने संघर्ष को विस्तृत आधार देने के लिए वे जाति, प्रांत और धर्म जैसी सामूहिक पहचानों का सहारा लेते थे। इस तरह सांप्रदयिकता ने मध्यम वर्ग के लोगों को कुछ फायदा पहुंचाया और उसे वैधता मिली। इस तरह 1937 ई. तक सांप्रदायिक राजनीति मुख्यत: सरकारी नौकरियों, शैक्षणिक रियायतों और राजनीतिक पदों (विधायिकाओं तथा नगर पालिकाओं आदि में आरक्षण) के इर्द-गिर्द मंडराती रही।

वर्ग-संघर्ष की सांप्रदायिक अभिव्यक्ति: सांप्रदायिकता अक्सर शोषकों और शोषितों के बीच तनाव और वर्ग संघर्ष को विकृत कर सिर्फ इस पर आधार पर सांप्रदायिक संघर्ष में बदल देती थी, कि वे अलग-अलग धर्मों के मानने वाले थे। यद्यपि उनके संघर्ष में धर्म का कुछ भी लेना देना नहीं था, तथापि राजनीतिक जागरूकता के अभाव में उन्हें सांप्रदायिक संघर्षों के रूप में विकृत अभिव्यक्ति मिली।

देश के कई हिस्सों में धार्मिक विभाजन सामाजिक और वर्गीय विभाजनों के साथ-साथ चल रहा था। इनमें अधिकतर स्थानों पर शोषक वर्ग, जमींदार, व्यापारी और साहूकार सवर्ण हिन्दू थे, जबकि गरीबों और शोषितों में मुसलमानों या नीची माने जाने वाली जातियों के हिन्दू थे। यही कारण है कि जब मुसलमान सांप्रदायिकतावादी यह प्रचार करते थे कि हिन्दू मुसलमानों का शोषण कर रहे हैं या हिन्दू सांप्रदायिकतावादी यह प्रचार करते थे कि मुसलमानों के कारण हिन्दुओं की संपत्ति या आर्थिक हित खतरे में है, तो पूरी तरह गलत होने के बावजूद यह प्रचार काम कर जाता था।

उदाहरण के लिए पूर्व बंगाल और मालाबार में काश्तकारों और जमींदारों तथा पंजाब में काश्तकारों-देनदारों और व्यापारियों-साहूकारों के संघर्ष को हिन्दू मुसलमानों के संघर्ष के रूप में अभिव्यक्ति मिली। बहुत से मामलों में ऐसा भी होता था कि किसी सामाजिक संघर्ष में भाग लेने वाले लोगों ने तो सांप्रदायिकता का परिचय नहीं दिया,

अध्याय 16

भारत की स्वतंत्रता से 1964 ई. तक

संसदीय, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य (1950 ई. का संविधान)

किसी देश का संविधान उसकी राजनीतिक अवस्था का वह बुनियादी सांचा-ढ़ांचा निर्धारित करता है, जिसके अन्तर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगों की स्थापना करता है, उनकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधों का विनियमन करता है। लोकतंत्र में प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है किंतु, प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलतों तथा राष्ट्ररूपी राज्यों के बढ़ते हुए आकार के कारण प्रत्यक्ष लोकतंत्र अब संभव नहीं रहा।

प्रतिनिधिक लोकतंत्र में जनता इस बात का निर्णय करती है कि उस पर किस प्रकार से तथा किसके द्वारा शासन हो। जनता अपनी प्रभुसत्ता का सबसे पहला तथा सबसे बुनियादी प्रयोग तब करती है, जब वह अपने आपको एक ऐसा संविधान प्रदान करती है, जिसमें उन बुनियादी नियमों की रूपरेखा दी जाती है, जिसके अन्तर्गत राज्य के विभिन्न अंगों को कतिपय शक्तियां दी जाती हैं और जिनका प्रयोग उनके द्वारा किया जाता है।

प्रत्येक संविधान उसके संस्थापकों एवं निर्माताओं के आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण होता है। वह जनता की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित होता है।

संविधान के स्रोत

भारत के संविधान के स्रोत अनेक हैं, जिसमें **भारतीय राजनीतिकों, भारत शासन अधिनियम 1935 और विदेशी संविधानों की भूमिका प्रमुख थी।** संविधान निर्माताओं ने इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि नितांत स्वतंत्र रूप से या एक दम नए सिरे से संविधान लेखन नहीं कर रहे हैं। उन्होंने जान बूझकर यह निर्णय लिया था कि अतीत की उपेक्षा न करके पहले से स्थापित ढांचे तथा अनुभव के आधार पर ही संविधान का निर्माण किया जाए। यह विकास कतिपय प्रयासों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम था।

स्वाधीनता के लिए शुरू किए गए राष्ट्रवादी संघर्ष के दौरान प्रतिनिधि एवं उत्तरदायी शासन संस्थाओं के लिए विभिन्न मांगें उठाई गई और अंग्रेज शासकों ने बड़ी कंजूसी से सयम-समय पर थोड़े-थोड़े संवैधानिक सुधार किए। वास्तव में संविधान के कुछ उपबंधों के स्रोत तो भारत में EIC तथा अंग्रेजी राज्य के शैशवकाल में ही खोजे जा सकते हैं।

राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के अंतर्गत ग्राम पंचायतों के संगठन का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थानों से प्रेरित होकर किया गया था। 73वें तथा 74वें संशोधन अधिनियमों में उन्हें अब और अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण बना दिया है।

मूल अधिकारों की मांग सबसे पहले **1918** में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के **मुंबई अधिवेशन** में की गई थी। **1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव** पारित कर **मूल अधिकारों** की मांग को दुहराया गया था। सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा **1928 में नियुक्त मोतीलाल नेहरू** कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में घोषणा की थी कि भारत की जनता सर्वोपरि लक्ष्य न्याय सीमा के अधीन मूल मानव अधिकार प्राप्त करता है। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में जो उन्नीस मूल अधिकार शामिल किए गये थे, उनमें से दस को भारत के संविधान में बिना किसी खास परिवर्तन के शामिल कर लिया गया है।

वर्ष 1931 में कांग्रेस के करांची अधिवेशन में पारित किए गये प्रस्ताव में न केवल मूल अधिकारों का ही नहीं बल्कि मूल कर्त्तव्यों का भी विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। मूल संविधान में मूल कर्त्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था किंतु बाद में 1976 में 42 वां संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के **भाग 4(A) के अनुच्छेद 51क** में **दस मौलिक कर्त्तव्यों** का समावेश किया गया।

संविधान में संसद के प्रति उत्तरदायी संसदीय शासन प्रणाली, अल्पसंख्यकों के लिए रक्षोपायों और संघीय राज्य व्यवस्था की, जो व्यवस्था रखी गई उसके मूल में भी **1928 में नेहरू कमेटी रिपोर्ट** है। अंततः कहा जा सकता है कि संविधान का लगभग **3/4 अंश** भारत **शासन अधिनियम, 1935** से लिया गया था। उसमें बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यक संसाधन मात्र किए गये थे। राज्य व्यवस्था का बुनियादी ढांचा तथा संघ एवं राज्यों के संबंधों, आपात स्थिति की घोषणा आदि को विनियमित करने वाले उपबंध **अधिकांशतया 1935 के अधिनियम पर आधारित थी।**

देशी स्रोतों के अलावा संविधान सभा के सामने विदेशी संविधानों के अनेक नमूने थे। **निदेशक तत्वों की संकल्पना आयरलैंड के संविधान** से ली गई थी। विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों वाली संसदीय प्रणाली अंग्रेजों से आई और राष्ट्रपति में संघ की कार्यपालिका शक्ति तथा संघ के रक्षा **बलों का सर्वोच्च समादेश** (Supreme Command) निहित करना और उपराष्ट्रपति को राज्यसभा का पदेन सभापति बनाने का उपबंध अमेरिकी संविधान पर आधारित था।

अमेरिकी संविधान में सम्मिलित अधिकार पत्र (Bill of Rights) भी हमारे मूल अधिकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत था। कनाडा के संविधान ने अन्य बातों के अलावा संघीय ढांचे और संघ तथा राज्यों के संबंधों एवं संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण से संबंधित उपबंधों को प्रभावित किया।

अध्याय 17

भारतीय रियासतें

कंपनी और भारतीय रियासतें

अट्ठारहवीं सदी के आरम्भ में महान मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। प्रभावी नियंत्रण के अभाव में भारत के विभिन्न स्थानों में बहुत सी भारतीय रियासतें, स्वायत्तता प्राप्त या अर्द्ध-स्वायत्तता प्राप्त इकाईयों के रूप में उभर कर सामने आयी। इन छोटी-बड़ी रियासतों के विकास ने अंग्रेजों का काम आसान कर दिया। इनमें से **हैदराबाद, अवध** और राजपूत रियासतों ने स्वत: कम्पनी की प्रभुसत्ता स्वीकार कर लिया। इनमें से कुछ रियासतों ने मुगलों एवं मराठों से संघर्ष किया था। अंग्रेजों ने यहां हस्तक्षेप करके उनकी रक्षा की।

अंग्रेजों एवं भारतीय रियासतों के बीच संबंधों को हम निम्नलिखित अवस्थाओं में बांट सकते हैं:-

1. कंपनी का भारतीय रियासतों से समानता प्राप्त करने के लिए संघर्ष (1740-65)
2. घेरे की नीति (1765-1813)
3. अधीनस्थ पार्थक्य की नीति (1813-57)
4. अधीनस्थ संघ की नीति (1858-1935)
5. समानता संघात्मक नीति (1935-1947)

इन अवस्थाओं का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है:-

कंपनी का भारतीय रियासतों से समानता के लिए संघर्ष (1740-65): ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना मुख्यत: एक **व्यापारिक संस्था के** रूप में हुई थी। भारत में अपने व्यापारिक हितों को बढ़ावा देने के लिए उसने **स्थानीय मुगलों से सम्पर्क** स्थापित किया तथा उनके अधीन उनकी अनुमति से देश के विभिन्न स्थानों में अपने व्यापारिक केन्द्र खोले। परन्तु शीघ्र ही इन्हें अन्य यूरोपीय शक्तियों यथा पुर्तगालियों, डच एवं फ्रांसीसियों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा।

इन कम्पनियों से प्रतिस्पर्धा तथा भारत की राजनीतिक दुर्व्यवस्था से इन्होंने महसूस किया कि आर्थिक गतिविधियों को सुचारू तथा लाभप्रद ढंग से चलाने के लिए कुछ हद तक राजनीतिक नियंत्रण आवश्यक है। शीघ्र ही एक शांतिपूर्ण व्यापारिक संस्था, राज्य विस्तार द्वारा अपनी धाक जमाने के लिए उत्सुक एक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गयी। अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करने के लिए इन्होंने **फ्रांसीसियों का** अनुसरण किया तथा **1751 में आर्काट** का घेरा कर अपनी राजनैतिक सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया।

इस क्रम में इन्होंने **1757 में प्लासी का युद्ध जीता** तथा बंगाल के नवाबों को अपनी कठपुतली बना लिया। इस प्रकार **1764 में बक्सर** के युद्ध में विजय प्राप्त कर इन्होंने 1765 में सम्राट शाह आलम से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली। इन सभी युद्धों के माध्यम से अब वह भारतीय रिसायतों की तरह ही एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया।

घेरे की नीति (1765-1813): इस नीति को मध्य राज्य की नीति (Ring Fence) भी कहा जाता है। इस काल में अंग्रेजों की यह नीति रही कि वे अपने पड़ोसी राज्यों की सीमाओं की रक्षा करें, ताकि उनकी अपनी सीमाएं सुरक्षित रहें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कंपनी ने अपने चारों ओर मध्य राज्य बनाने का प्रयास किया। कंपनी का एक अन्य उद्देश्य दूसरे भारतीय रियासतों से बराबरी की पदवी हासिल करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु **वारेन हेस्टिंग्स** ने **मैसूर एवं मराठों** के साथ युद्ध किया। कम्पनी ने अवध की रक्षा व्यवस्था का कार्य संभाला, ताकि बंगाल की रक्षा की जा सके। वेलेजली के आने से इस नीति में कुछ परिवर्तन हुआ। वह चाहता था कि भारतीय रियासतें अपनी रक्षा के लिए कंपनी पर निर्भर रहें, चाहे इसके लिए उन्हें बाध्य ही क्यों न करना पड़े।

1803 में जार्ज बार्लो ने कहा था कि ''कोई भारतीय रियासत ऐसी नहीं रहनी चाहिए, जो अंग्रेजी शक्ति पर निर्भर न हो अथवा जिसका राजनीतिक आचरण इसके पूर्णतया अधीन न हो''। यह नीति, घेरे की नीति का ही विस्तार थी। वेलेजली ने फ्रांस से अंग्रेजी रियासतों को बचाने के लिए सहायक सन्धि आरम्भ की। उसने **हैदराबाद, मैसूर, अवध एवं अन्य छोटी-छोटी रियासतों से सहायक सन्धि किया।** इसके पश्चात् उसने **1803 में** मराठों को और 1805 में होल्कर को हरा कर अंग्रेजी प्रभुसत्ता स्थापित किया।

अधीनस्थ पार्थक्य की नीति (1813- 57): लार्ड हेस्टिंग्स के समय में ब्रिटिश नीति में कुछ और परिवर्तन हुए। उसने ''पारस्परिकता और आपसी मित्रता'' की सन्धियों को ''निम्नपदस्थ सहयोग'' की सन्धियों में परिवर्तित कर दिया। अब अंग्रेजों में साम्राज्य की भावना जाग उठी एवं **''सर्वश्रेष्ठता के सिद्धान्त''** का विकास होना आरम्भ हुआ। उसने अधिकांश भारतीय रियासतों को लाचार कर दिया कि वे युद्ध या सन्धि करने या दूसरी शक्तियों से सुलह करने के अपने सर्वोच्च अधिकारों को समर्पित कर दें। इस **प्रकार उसने कंपनी की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार करने पर राज्यों को बाध्य किया।**

औपचारिक दृष्टि से इन राज्यों की आंतरिक सर्वोच्च शासन शक्ति अक्षुण्ण थी, परन्तु व्यावहारिक तौर पर आंतरिक शासन के मामलों में ब्रिटिश रेजिडेन्ट बहुधा हस्तक्षेप किया करते थे। वे अब नियंत्रण अधिकारी के रूप में कार्य करने लगे। राजा चन्दूलाल हैदराबाद के प्रशासन में **रेजिडेन्ट कर्नल लो** से आज्ञा प्राप्त किया करते थे। यही स्थिति अन्य रियासतों यथा बड़ौदा एवं ट्रावनकोर में भी थी।

1833 के चार्टर एक्ट ने कंपनी को अपना व्यापार बन्द करने को कहा तथा वह अब व्यापारिक संस्था से राजनैतिक संस्था में परिवर्तित हो गयी। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने **1834 में** संयोजन की नीति की स्पष्ट व्याख्या की और 1841 में इसका पुन: उल्लेख किया। गवर्नर जनरलों को हिदायत दी गयी कि वे साम्राज्य में नये राज्यों को मिलाने का कोई अवसर हाथ से न जाने दें।

अध्याय 18

1947 से 2009 तक का इतिहास

राज्यों का भाषावाद पुनर्गठन

राज्यों के पुनर्गठन की आवश्यकता 20वीं शताब्दी के शुरू से ही महसूस की जा रही थी। माण्टफोर्ड रिपोर्ट 1918 ने राज्यों के पुनर्गठन की रूप-रेखा दी थी। इसमें राज्यों को भाषा के आधार पर विभाजित करने की सिफारिश की गई थी।

भारतीय संवैधानिक कमीशन, **1931 ई. ने भी राज्यों के भाषा के आधार पर पुनर्गठन की सलाह दी थी।** भारतीय संवैधानिक कमीशन, 1931 ई. की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप 1937 ई. में उड़ीसा राज्य का गठन किया गया।

ब्रिटिश शासन के दौरान राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया। बंगाल विभाजन का विरोध कर कांग्रेस ने भी अप्रत्यक्ष रूप से भाषा के आधार पर राज्य के गठन का समर्थन किया।

कांग्रेस ने सन् 1920 ई. में औपचारिक रूप से राज्यों के भाषा के आधार पर पुनर्गठन का समर्थन किया। सन् **1927 ई. में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया**, जिसमें कहा गया कि अब समय आ गया है कि भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया जाए। सन् 1928 ई. के **नेहरू रिपोर्ट में भी अनुशंसा** की गई थी कि राज्यों को भाषा के आधार पर पुन: वर्गीकृत किया जाए।

लेकिन स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस के नीति में कुछ परिवर्तन आया। इसका कारण उस समय की असमान्य परिस्थिति से जुड़ी समस्याएं थीं, जिनका सामना सरकार कर रही थी। जैसे- देशी राज्यों का भारत में विलय, संविधान का निर्माण एवं विभाजन से उपजी समस्याएं एवं देश के आर्थिक नियोजन द्वारा विकास की आवश्यकता। इसलिए स्वतंत्रता के बाद देश के राज्यों के गठन की तत्कालीन व्यवस्था एक प्रकार से अंतरिम व्यवस्था ही थी। इसके अन्तर्गत पूरा देश **19 राज्यों में विभक्त** था और ये राज्य तीन श्रेणियों में बंटे थे- भाग 'क' (9 राज्य) भाग 'ख' (5 राज्य) एवं 'ग' (5 राज्य)।

सभी राज्यों को अलग-अलग दर्जा प्राप्त था तथा उनकी अलग-अलग विशेषताऐ थीं। साथ ही अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों को भाग 'घ' में रखा गया था, जिसके अन्तर्गत केन्द्र शासित प्रदेशों, जिन्हे भारतीय सीमा के अन्तर्गत मिलाया जाना था को रखा गया। इसी प्रकार संविधान 'क' सातवें संशोधन, **1956 से पूर्व देश में 27 राज्य** थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषा के आधार पर राज्यों के गठन के लिए प्रबल मांगें होने लगी और मुद्दे को बार-बार संविधान सभा में उठाया जाने लगा। **संविधान सभा ने न्यायमूर्ति एस.के. धर की अध्यक्षता** में एक आयोग का गठन कर दिया। धर आयोग ने इस आधार पर भाषायी राज्यों के गठन की मांग को ठुकरा दिया कि इससे राष्ट्रीय एकता को ऐसे समय में अनावश्यक और गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाएगा, जब इसे सुरक्षित रखने के लिए हर संभव प्रयासों की आवश्यकता है।

धर आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि **इन मांगों को स्वीकार करना गैर-जिम्मेदाराना तथा देश भक्ति विरोधी कार्य होगा।** तथापि यह रिपोर्ट भाषायी आधार पर राज्यों के गठन के मांग को दबा नहीं सकी। विशेष रूप से मद्रास, हैदराबाद और मैसूर के तीन राज्यों में तेलुगु भाषी लोगों की उनकी पृथक आन्ध्र राज्य की मांग बहुत प्रबल थी।

महाराष्ट्र के लोग गुजरात को मिलाकर बने संयुक्त बंबई के स्थान पर पृथक मराठी भाषी राज्य बनाना चाहते थे। इस प्रकार के मांगों से कांग्रेस में बड़ी चिंता व्याप्त हो गई और **1948 के** अंत में कांग्रेस द्वारा इस प्रश्न को पूर्णत: विशुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण से पुनर्वीक्षित करने के लिए ज**वाहर लाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और पट्टाभि सीतारम्मैया की सदस्यता वाली (जे.बी.पी. समिति)** एक संयुक्त समिति गठित की गई।

इस संयुक्त समिति की रिपोर्ट में भी कुछ संकोच के साथ भाषायी राज्यों के गठन के विरुद्ध राय व्यक्त की गई। इस समिति ने राज्यों में यथास्थिति बनाए रखने की वकालत की और केवल मात्र आन्ध्र राज्य संबंधी मांग को ही एक ऐसा खास मुद्दा माना, जिसे खुले मन से स्वीकार करना ही श्रेयस्कर समझा गया। इसी **बीच श्रीरामल्लू की मृत्यु** हो गई, जो आन्ध्र प्रदेश की निर्माण की मांग को लेकर भूख-हड़ताल पर थे। इसके परिणामस्वरूप आन्ध्र प्रदेश में हिंसा शुरू हो गई और स्थिति अत्यंत तनावपूर्ण हो गई। अत: सरकार ने न्यायधीश डा. वान्चू को इस मामले के जांच के लिए नियुक्त किया। फलत: उन परिस्थितियों में **पहले भाषायी राज्य आन्ध्र प्रदेश की स्थापना सन् 1953** में हुई।

इस परिस्थिति में भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की मांग पुन: जोर पकड़ गई और अन्त में सरकार ने **'राज्य पुनर्गठन आयोग'** की **स्थापना 1953 में** की, जिसके अध्यक्ष **श्री फजले अली** थे एवं पं. **हृदयनाथ कुंजरू व सरदार के.एम. पणिक्कर** इस आयोग के सदस्य थे।

आखिरकार निम्नलिखित कारणों से सरकार देश को भाषायी आधार पर बांटने को विवश हो गई-

(i) मूल रूप से अंग्रेजों द्वारा हस्तगत प्रांत तार्किक, वैज्ञानिक और भाषायी विचार का ख्याल किए बगैर बनाए गए थे। अंग्रेज प्रशासकीय सुविधा से मतलब रखते थे। अत: प्रदेशों को हस्तगत करने के पीछे सांस्कृतिक एक रूपता के बजाय प्रशासनिक सुविधा ही मूल मंशा रहती थी।

(ii) भाषायी राज्य सर्वसाधारण को लुभाते थे, अत: विरोधी दलों ने सत्ताधारी कांग्रेस के प्रति विरोध पैदा करने के लिए इस मुददे को हवा दी।